श्री
रामनवमी
जन्मोत्सव
विशेषांक

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाई-22002 (आगरा) उ.प्र.

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते—करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 47 | अप्रैल 2014 | अंक : 1

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु
शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु
शं न इषिरो अभि वातु वातः।।

ज्योति ही जिसका मुख है, वह अग्नि हमारे लिए कल्याणकारक हो; मित्र, वरुण और अश्विनीकुमार हमारे लिए कल्याणप्रद हों; पुण्यशाली व्यक्तियों के पुण्यकर्म हमारे लिये सुख प्रदान करने वाले हों तथा वायु भी हमें शान्ति प्रदान करने के लिए बहे।

(ऋग्वेद 7 ।35 ।4)

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	10
3.	प्राणायाम – योगी आदित्यनाथ जी महाराज	12
4.	योगदर्शन और चक्रसाधना – आचार्य प्रतापादित्य	16
5.	अखण्ड ज्योति महाप्रभु – कुँवर ए.के. सिंह	20
6.	गुंजन – डॉ. विजय सिंह	24
7.	यौगिक प्रश्नोत्तरी	28
8.	सूत्र का मूलमन्त्र – प्रो. ऋषिराम शर्मा	30
9.	गूढ़ विद्या तथा आध्यात्मिक जीवन – श्री एम.एम. अग्रवाल	36
10.	अमृत कुम्भ – स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज	43
11.	योग और कर्म – श्री सूर्य प्रसाद उपाध्याय	46
12.	सदोपदेश – श्री भोले बाबा	49
13.	भाता है गुरु दर आना – जगदीश राए बंसल	50
14.	पा लो रे पा लो – विजय शर्मा	51
15.	हम खोटे सिक्कों को पुन: अपनाओ – राजीव कुमार	52
16.	गंगा स्नान की महिमा	53
17.	पद – भूपेन्द्र 'अंकुश'	55
18.	निवेदन – ले. भानुदत्त त्रिपाठी	56
19.	पार्वती आसन	57
20.	चित्त के स्पन्दन से होने वाली....	58
21.	योग–साधन में तप का महत्व – श्री सुरेन्द्र बहादुर	[illegible]

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 160.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 900.00

मेरे श्री गुरुदेव

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।

गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

मैं अपने श्री गुरुदेव के चरणारविन्द की महिमा किन शब्दों में लिखूँ यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। गुरुदेव एक ऐसा शब्द है जो सभी के लिए मान्य है और हर व्यक्ति जो किसी भी प्रकार से गुरुदेव की शरणागति प्राप्त कर चुका है, उसके लिए उसके गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म हैं। साधक जब तक गुरुदेव के स्वरूप में ईश्वर बुद्धि धारण नहीं करता तब तकवह परम श्रेय के पथ का पथिक नहीं बन सकता, इसलिए भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखने वाली भारतीय जनता अपने-अपने गुरुदेव के चरणारविन्द में पूर्ण ईश्वर बुद्धि रखती है व श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में न्यौछावर होना अपना परम पुनीत सौभाग्य समझती है। गुरुदेव क्या है और उनका स्वरूप क्या है? यह एक पृथक लेख का विषय है, जिसका प्रकाशन इस पत्र के किसी अंक में अवश्य होगा। फिर भी मैं इतना बतला देना उचित समझता हूँ कि गुरुदेव के दो स्वरूप होते हैं, एक उनका अपना निज स्वरूप और दूसरा साधक की श्रद्धा से निर्वाचित स्वरूप। जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से श्रीमद्भगवद्गीता के 17 वें अध्याय में कहा है :-

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।

अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसमें सच्चिदानन्द धन नित्य चेतन का स्वरूप होता है। श्रद्धा साधक के अपने हृदय का पवित्र उद्गार है। श्रद्धावान् व्यक्ति जिसके विषय में जो सोचता है वहीं से उसको ईश्वरीय शक्ति मिल जाती है। धन्ना जाट, नामदेव आदि के जितने उदाहरण मिलते हैं वह सबके सब श्रद्धा के ही उज्ज्वल प्रतीक हैं। किसी साधारण व्यक्ति को ईश्वरीय भावना से देखना यह भक्त के हृदय की पवित्र भावना है व ईश्वर का ईश्वर होना उसकी अपनी यथार्थता है। गुरुदेव के विषय में भी सभी आस्तिक लोगों की ईश्वरीय भावना होती है और अपनी भावना के अनुरूप ही वह लोग फल को पा लेते हैं ''यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।'' इसके

अतिरिक्त यदि श्रद्धेय पुरुष परिपूर्ण है और साधक श्रद्धा का पुतला है तो अभीष्ट लाभ में कोई शंका का स्थान है ही नहीं। मेरे गुरुदेव जिनके विषय में यह पंक्तियाँ लिखने लगा हूँ सिद्धों के महा सिद्ध, सर्व समर्थ योगयोगेश्वर व सर्वतः परिपूर्ण हैं। उनकी पवित्र ख्याति को बहुत ही कम लोग जान पाये हैं। सम्भव हो सकता है इस विषय में उनका अपना ही संकल्प हो किन्तु उनके चरणारविन्दों के चिन्तन करने वाले सर्वसाधारण जन समुदाय के अन्दर जो–जो चमत्कारिक घटनायें घटित होती रहती हैं उनका इस छोटे–से लेख के अन्दर लिखना भी सम्भव नहीं हो सकता।

उनकी पवित्र जन्म भूमि अमृतसर (पंजाब) है। अमृतसर में ज्योतिष विद्या के गण्यमान्य विद्वान् महामान्य पं. गण्डाराम जी ज्योतिषी के घर में उनका पवित्र अवतरण हुआ। लगभग बारह या चौदह वर्ष की आयु तक बाल–क्रीड़ा करते हुए घर पर रहे। उसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े और कुछ दिन साधु समुदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करने लगे। उसमें सब से बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि जहाँ–जहाँ पर कोई पहुँच वाला सन्त मिलता और मेरे गुरुदेव जी के स्वरूप को पहचानता वही गद्‌गद् कण्ठ होकर स्तुति करता और कृपा की भीख माँगता। इन पंक्तियों में मैं अपने गुरुदेव जी के जीवन चरित्र के विषय में कुछ लिखूँ, यह मेरा लक्ष्य नहीं है। फिर भी इतना कह देना तो आवश्यक ही है कि अपने बाल्यकाल में ही वह घटनायें घटीं जो सर्वसाधारण के जीवन में कभी हो नहीं सकतीं। चार साल की उम्र में माता–पिता को दिव्य ज्योति का अनुभव कराना, छः साल की उम्र में वृद्धा पड़ोसिन जो मरणासन्नावस्था में थी उसके सिर पर अपने कर–कमल का स्पर्श कर पूर्ण गति का वरदान देना, लगभग 9 वर्ष की अवस्था में अमृतसर के पास रामतलाई पर दर्शनार्थ आने के इच्छुक महात्माओं को स्वयं ही जाकर दर्शन देना, चौदह या पन्द्रह साल की उम्र में वनों को जाते हुए मुरादाबाद की तरफ से निकलते हुए किसी गाँव में किसी कुम्हार के लड़के के सिर पर कर स्पर्श करके दिव्यानुभूति कराना व खेचरी मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना उनके जन्मजात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक है। किन्तु फिर भी लोक–लीला का अनुसरण करते हुए जंगलों में विचरते रहे और अपनी इस वन–यात्रा में कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मनोरथ बनाया और अपने आप थोड़े ही समय के अन्दर नेपाल हिमालय को चले गये। नेपाल की राजधानी काठमांडू से ऊपर जहाँ बागमती गंगा का उद्‌गम स्थान है, वहाँ से कुछ दूर चल कर किसी झारखण्ड में रह कर घोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते रहे। उस स्थान पर ही स्वयं सदा शिव स्वरूप एक महापुरुष आये जो मेरे श्री गुरुदेव जी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से ले गये और एक स्थान पर छोड़ दिया। केवल दो एक बातें बतलाई। एक नर–भक्षक जड़ी दिखलाई और कहा कि यह जड़ी नर–भक्षक है, मनुष्य

को खा जाती है। दूसरी बात कि तुम यहाँ रहो, यह कह कर वह महापुरुष अपनी गुफा में जाकर के समाधिस्थ हो गये। उस स्थान से 6–6 मील 7–7 मील की दूरी पर कोई–कोई सिद्ध महापुरुष रहते थे। मेरे श्री गुरुदेव विचरते हुए उन लोगों से मिले। उन लोगों ने बताया, यह महापुरुष सदाशिव हैं और कई हजार वर्षों से यहाँ पर बैठे हुए हैं। यही सिद्धियों के दाता स्वयं महासिद्ध हैं और छः महीने में एक बार समाधि से उठते हैं। श्री प्रभुजी मेरे गुरुदेव अपने मुखारविन्द से यह बतलाते थे कि जब तक श्री महाप्रभु जी समाधि से उठे तब तक उनकी अपनी भी कई रोज की समाधि लग उठी थी। इसका अर्थ यही है – 'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यस्तुछिन्नसंशयाः।' अर्थात् गुरुदेव का चुपाचुपी का व्याख्यान हो और शिष्यों के संशय स्वतः ही नष्ट होते चले जायें। यही सद्गुरु तत्व की महत्ता है। सामर्थ्यवान् गुरुदेव को बहुत उपदेश करने की आवश्यकता नहीं होती उनका संकल्प ही ''कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्'' की शक्ति रखता है। मेरे श्री गुरुदेव हिमालय के उन हिमाच्छादित शिखरों पर लगभग 12 वर्ष रहे और फिर संसार के पतित एवं वेदनापूर्ण दुःखी जीवों को देखकर उन दयासागर जी के मन में दया के भाव उमड़े और उन्हें संसार के आधिव्याधियों से पीड़ित दुःखी प्राणियों को पवित्र योग मार्ग का पथ प्रदर्शन करने के लिए श्री कृपानिधि जी भू–मण्डल पर लौट आये। श्री गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से यह कहा करते थे कि हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर बैठ करके आधि–व्याधियों से पीड़ित दुःखाक्रान्त जीवों को देखा और उनके भले की भावना पूर्णरूपेण मन में जाग उठी, अतः पुनः संसार में आ करके प्राणी मात्र के भले के लिए पवित्र योग–मार्ग के प्रचार का आरम्भ कर दिया –

प्रज्ञाप्रासादमारूह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति॥

अर्थात् प्रज्ञा–प्रासाद पर आरूढ़ हुए योगिराज संसार वालों को इस प्रकार देखते हैं जैसे पर्वत शिखर पर बैठे हुए व्यक्ति भूमि वालों को देख लिया करते हैं। ठीक इसी उदाहरण के प्रतीक बन कर मेरे श्री गुरुदेव भू–मण्डल पर आये और उन्होंने योग–प्रचार का पवित्र कार्य प्रारम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी ने अवनी–मण्डल पर आकर तीन प्रकार के कार्य आरम्भ किये –

(1) योग के सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति। इसमें भी सबसे विशेष बात यह थी; निज निर्मित साधनों का प्रचार। उनमें उनका एक प्रमुख साधन था; 'जीवन तत्व साधन' इस जीवन तत्व साधन के अन्दर नौ क्रियायें हैं, जिनके करने से लोगों को अद्‌भुत व आश्चर्यजनक लाभ होता है। इस साधन के अन्दर सबसे बड़ी विशषता यह है कि यह लगातार विधि–विधान पूर्वक करने से पेट में इस प्रकार की अग्नि पैदा करता है जिसको 'वृक' अग्नि कहते हैं। जिस प्रकार जंगली जानवर भेड़िया को हर समय भूख लगती रहती है,

उसी प्रकार इन साधनों के करने से मनुष्य को हर समय भूख लगती रहती है। पेट में एक अग्नि सी धधकती मालूम पड़ती है। वह अग्नि तब तक बन्द नहीं होती जब तक मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्णरूपेण ठीक न हो जाये। इसके साथ–साथ इस साधन के अन्दर एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस साधन को करते हुए बच्चे का ध्यान करने की एक विधि है जिससे मन की एकाग्रता बनकर स्वाभाविक लाभ होता है और बच्चा दीखने लगता है। इस बच्चे के देखने का आह्लाद हर समय बना रहता है और उससे उसके अधिकांश रोग की निवृत्ति हो जाती है। इसके साथ ही साथ दृढ़तर अभ्यास करने के बाद वही बच्चा श्रीकृष्ण आकृति में बदल जाता है, और साधक का अध्यात्म में प्रवेश हो जाता है। इस साधन का नाम है जीवन तत्व साधन।

'जीवन तत्व साधन' को हमने पुस्तक के रूप में प्रकाशित करा दिया है। इसका सभी को अवलोकन करना चाहिए। इन क्रियाओं के लिए समय का विभाजन इस प्रकार रखना चाहिए :–

1 :	सर्वोत्तान	– केवल तीन बार समय केवल अधिक से अधिक दो मिनट।
2 :	स्कन्ध चालन	– समय पन्द्रह मिनट।
3 :	पादचालन	– आठ मिनट।
4 :	नाभिचालन	– पन्द्रह मिनट।
5 :	जानुप्रसार	– दोनों ओर से तीन बार समय लगभग चार मिनट।
6 :	बालमचलन	– केवल एक मिनट।
7 :	बच्चे का ध्यान	– पाँच मिनट।
8 :	नाड़ी संचालन	– पन्द्रह मिनट।
9 :	उत्क्षेपण	– केवल एक या दो मिनट।

इसी प्रकार यदि क्रियायें अधिक बढ़ानी हैं तो समय अधिक बढ़ाया जा सकता है। सभी प्रकार की बीमारियों में मेरे गुरुदेव के अपने मन से प्रकट किया हुआ यह जीवन तत्व साधन अमृत के समान परम लाभदायक है। इसमें भी बच्चे का ध्यान सब प्रकार से लोक व परलोक के लिए परम श्रेयस्कर है।

इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा के क्षीण रोगियों के लिए गुरुदेव जी ने अपने मन से अमर तत्व साधन को निकाला।

(2) अमर तत्व साधन – जिसमें केवल क्षीर समुद्र का ध्यान किया जाता है और

हाथ–पैरों को इस प्रकार से चलाया जाता है जिस प्रकार हम समुद्र में तैर रहे हों। जो साधक श्री गुरुदेव की परम कृपा से अपने को क्षीर–सागर में तैरते हुए देखने लग जाते हैं, उनका राज–यक्ष्मारोग बहुत थोड़े दिन में दूर हो जाता है और उनको इतनी प्रसन्नता होती है कि उसमें उनकी समस्त बीमारियाँ भाग जाती हैं और बहुत ही थोड़े दिन के अन्दर अपने आपको पूर्ण स्वस्थ देखने लगते हैं। प्रथम बार श्री गुरुदेव जी यह जीवन तत्व व अमर तत्व आदि साधन ही लोक–हितार्थ कराया करते थे; किंतु कुछ समय बाद नेती, धौति, न्यौली, बस्ति, गजकरणी आदि क्रियायें भी अधिकारी देखकर कराने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य आसन, बन्ध, मुद्रायें और विभिन्न प्रकार की गुप्त क्रियाओं का शिक्षण भी आरम्भ कर दिया, यह सबसे बड़ा काम उन्होंने संसार में आकर किया।

(3) **शक्तिपात दीक्षा** – जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है, सिद्धयोग और साधन योग। साधन योग में मनुष्य साधन करता–करता शनैः–शनैः अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और सिद्ध योग में सिद्धानुग्रह से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है और उसकी प्रगति इतनी ऊँची होती है कि जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी नहीं प्राप्त कर सकता। सिद्धयोग के दाता पूर्ण सदगुरु सिद्ध योगिराज ही हो सकते हैं और वही लोग शक्ति संचार भी कर सकते हैं। इस 'सिद्धयोग' का प्रारम्भ भगवान् सदाशिव से हुआ। पुराणों में हिमालय के घन–घोर जंगलों में होने वाले एक सिद्धाश्रम की चर्चा मिलती है, जिसमें भगवान् सदाशिव के शिष्य–प्रशिष्य योगाचार्यगण निवास करते हैं, यह सभी लोग महासिद्ध हैं और समय–समय पर संसार में व्यस्त गृहस्थ जनों को सन्मार्ग–दर्शन के लिए संसार में आया करते हैं। यह लोग सर्व समर्थ महापुरुष हैं। यही लोग शक्ति संचार कर सकते हैं। मेरे श्री गुरुदेव भी इन सबकी तरह एक अनादि महासिद्ध हैं। उन्होंने संसार में आकर शक्ति पात दीक्षा देनी प्रारम्भ की।

उनके कृपा–फल को प्राप्त कर कितने ही सैंकड़ों की संख्या में साधु जंगलों में समाधि लगा रहे हैं, और तत्व विजयी होकर अपने शरीरों को एक सुन्दर नवयुवक के समान रखते हैं। कितने ही साधु षट्चक्रों का भेदन करके लोक–लोकान्तरों में गमन करने की शक्ति वाले हो गये और स्वायत्ततनु होकर हिमालय की कन्दराओं में निवास कर रहे हैं। मेरे गुरुदेव योग–योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सन् 1914 के लगभग हरिद्वार के कुम्भ मेले में प्रथम बार हिमालय से उतर कर आये। जिन जीवों के संस्कार उनके चरणारविन्द में उन्हें ले आते हैं या जो इस पवित्र योग–मार्ग के जिज्ञासु हैं उनको पवित्र योग–मार्ग का अनुयायी बनाकर चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना, हरिद्वार कुम्भ मेले के समय उनके अपने संकल्प से ही उनके कुटुम्बी जनों ने उन्हें पहिचाना और साधारण चर्चाओं में ही तर्क

वितर्क करने लगे कि महाराज जी आप कहीं पर किसी स्थिति में रहें, अब हम आपको अवश्य ही पहचान लेंगे। श्री महाराज जी ने उन लोगों से कहा कि भाई! हम साधू हैं तुम्हें हमसे आग्रह नहीं करना चाहिए। तुम अपना कार्य करो हम अपना कार्य करेंगे। किंतु वे लोग नहीं बदले। आग्रह करते ही रहे। इसी बीच में उन्होंने आश्चर्य देखा कि उनसे बात करते–करते ही श्री गुरुदेव जी वहीं अन्तर्धान हो गये। वह लोग लाख प्रयत्न करने पर भी उनका अन्वेषण नहीं कर सके। अपनी हठ–धर्मी का दुष्परिणाम पाकर उन सभी को महान् दुःख हुआ। किन्तु उनको यह भी ज्ञान हो गया कि यह हमारे कुटुम्बी भाई बन्धु ही नहीं है किन्तु कोई सामर्थ्य वान् परम योगिराज हैं। श्री गुरुदेव जी की इस प्रभुता को जानकर लोगों ने अत्यन्त विनय की, जिसके फलस्वरूप श्री प्रभु जी वहीं प्रकट हो गये किन्तु एक बालक के रूप में। उस बालक को यह लोग नहीं पहचान सके। सोचते रहे यह कोई 15–16 साल का बालक है। कहीं कुम्भ मेले में आया होगा, हमारे पास आकर बैठ गया है। किन्तु इन लोगों की अनभिज्ञता को देखकर उस बालक के रूप में छिपे हुए सर्व समर्थ सिद्धों के सिद्धेश्वर मेरे गुरुदेव उनसे मुस्करा कर कहने लगे कि भाई तुम किस चिन्ता में हो? किसका अन्वेषण कर रहे हो? उन लोगों ने कहा, ब्रह्मचारी जी! हमारे एक भाई साधू रूप में अभी–अभी यहाँ थे, किन्तु पता नहीं कहाँ चले गये हैं? हमने उनके साथ बड़ा आग्रह किया था, उस आग्रह का हमें भारी पश्चाताप है। जब वह लोग यह कह ही रहे थे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहाँ कोई ब्रह्मचारी नहीं है, प्रत्युत योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज हैं। इस अद्भुत घटना को देखकर सभी कुटुम्बी जनों ने निश्चय कर लिया कि यह केवल मात्र हमारे कुटुम्बी ही नहीं हैं, किन्तु इस आकृति में छिपे हुए कोई सर्वसमर्थ योगिराज हैं उसके बाद उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में कोई हठ नहीं की और अपने–अपने घरों को लौट गये। कुछ लोगों ने श्री प्रभुजी को अमृतसर ले जाने का हठ किया श्री प्रभुजी की स्वयं अपनी इच्छा थी ही इसलिए वह हिमालय से उठकर के आये। उनके हठ को स्वीकार करके अमृतसर चले गये और वहाँ जाकर कुछ समय के लिए पण्डित वेष में रहने लगे। यह श्री प्रभु जी का गृहस्थ वेष था। इस वेष में उनको कोई पहचान नहीं सकता था। केवल अपने निवास स्थान पर रहते हुए जिस समय वन की बात किया करते थे सुनने वाले समझते थे कि इतने घनघोर जंगलों में सम्भवतः नहीं गये होंगे। अचानक इन्हीं दिनों में एक घटना घटी। अमृतसर में हाल दरवाजे से बाहर एक सराय है, जिसको सन्तराम की सराय कहते हैं। उसमें एक परम तेजस्वी देदीप्यमान मुख–मण्डल वाले एक महात्मा आकर समाधिस्थ होकर बैठ गये। वह बिल्कुल नग्न थे। तीन दिन व तीन रात्रि बिना कुछ खाये पिये समाधि स्थिति में वह महात्मा वहीं बैठे ही रहे। सारे शहर में उनकी प्रख्याति फैल गई। दर्शकों की भारी भीड़ उनके पास एकत्र हो गई। श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में जाकर गृहस्थी लोगों ने प्रार्थना की श्री महाराज जी! आप

प्रभवे नमः

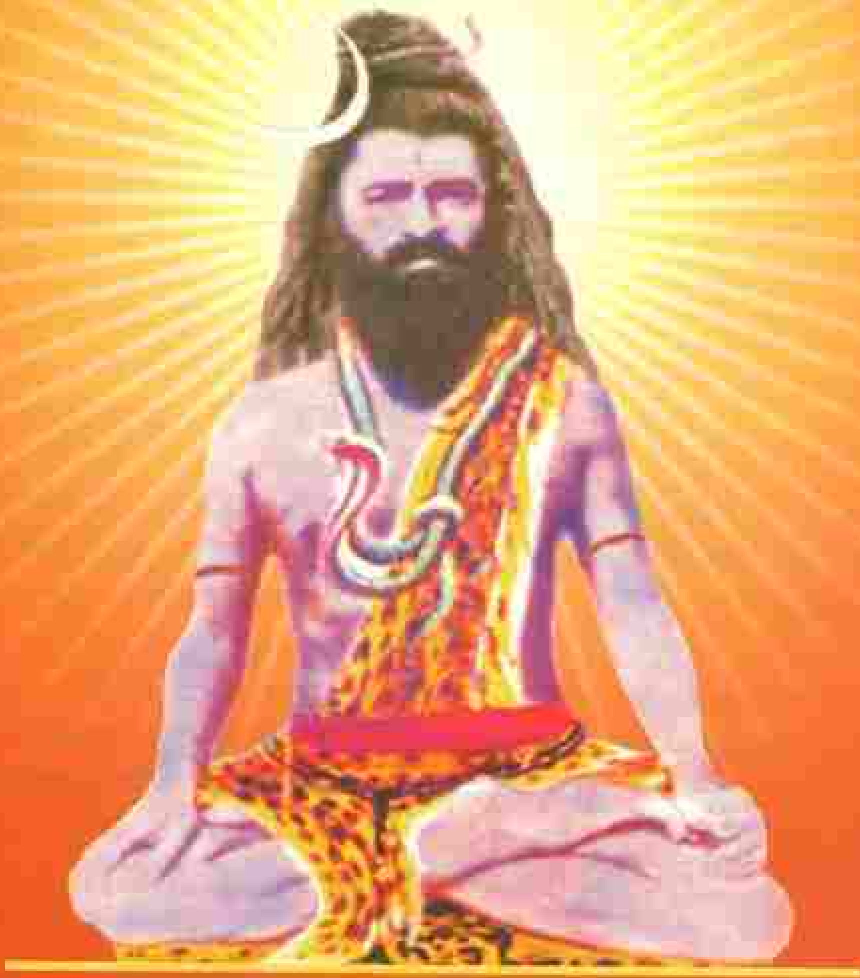

दादा गुरुदेव योगेश्वर
प्रभु रामलाल जी महाराज

बड़े-बड़े जंगलों में हो आये हैं, किन्तु अभी तक आपको इस प्रकार के सिद्ध योगिराज जी नहीं मिले होंगे जैसे महात्मा सन्तराम की सराय में आकर बैठे हैं? वह तीन दिन से बिल्कुल निराहार हैं और पत्थर की मूर्ति की तरह से बैठे हैं, न हिले हैं न डुले हैं। चलिए आपको भी उनके दर्शन करा लावें। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया, भाई! हमें रहने दो, तुम्हीं दर्शन कर आओ। जब तीन रात्रि से बैठे हैं तो अच्छे तो हैं ही। किन्तु लोगों ने बड़ी भारी हठ की। लोगों के मन में यह भावना थी कि उस महात्मा को देखकर श्री गुरुदेव जी आश्चर्य चकित हो जावेंगे और कहेंगे कि हाँ, यह तो कोई अवश्य सिद्ध योगिराज हैं। किन्तु बात कुछ और ही थी। श्री प्रभु जी उन लोगों के आग्रह करने पर सन्तराम की सराय में गये। जहाँ वह महात्मा समाधि लगाकर बैठे हुए थे, धीरे-से उनके पीछे जाकर खड़े हो गये। लोगों को यह आश्चर्य हुआ कि और लोग सामने खड़े हैं और यह पीठ के पीछे खड़े हैं। थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि महात्मा के शरीर में एक कम्प पैदा हुआ। उस कम्पन के साथ उनके प्राण-कोष ब्रह्माण्ड से नीचे आ गये। महात्मा सचेत होकर जाग उठे और बड़ी तीव्रता के साथ खड़े होकर परम करुणार्णव मेरे श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में गिर पड़े और चरणों से लिपट गये। महात्मा इतने रोये कि श्री प्रभुजी के बहुत समझाने पर भी उनके आँसू बन्द नहीं होते थे। श्री प्रभुजी ने उनको दोनों हाथों से उठाकर कण्ठ से लगा लिया और सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुए कहा – बेटा! रोते क्यों हो? मैंने ही तुमको शतपथ से बुलाया है तुम्हारी समाधि अपूर्ण थी, आज से वह पूर्ण हो जायेगी और तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जायेगी। आकाश-गमन आदि सब ठीक हो जायेगा। महात्मा ने बड़ी कठिनता से श्री प्रभुजी से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। प्रभो! हे सर्वशान्तिमान्! मेरे रोने का केवल एक ही कारण है। मैं आपका मन्द बालक हूँ। तीन दिन तीन रात मेरी कठोर परीक्षा के बाद आपने मुझे दर्शन दिये हैं। मैं तड़पता रहा चरणारविन्दों के दर्शन के लिए, किन्तु आपके चरणारविन्द में बहुत से स्त्री पुरुषों का जमघट होने के कारण मैं नहीं आ सका और आप दर्शन देने के लिए नहीं आये। आज मेरा यह शुभ दिन है। पता नहीं मेरे कौन से पुण्य प्रारब्ध से प्राणिमात्र के अन्तर्द्रष्टा श्री प्रभुजी! आपने मुझे आकर कृतार्थ किया है। श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को कुछ समय अपने पास रखकर हिमालय भेज दिया। जो लोग श्री प्रभुजी के साथ सन्तराम की सराय में गये थे, उनके आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं रहा। वह लोग भली प्रकार जान गये, इस विप्र वेष में छिपे यह अवश्य कोई सर्वसमर्थ महापुरुष हैं। यह पहली घटना थी जिससे कुछ सर्व साधारण लोग मेरे गुरुदेव के स्वरूप को कुछ-कुछ समझने लगे। यहाँ से ही शक्तिपात और सब प्रकार के योग प्रचार का कार्य आरम्भ हुआ। मेरे गुरुदेव ने इस बीच में क्या-क्या कार्य किया, वह शनैः-शनैः इस पत्र में प्रकाशित होता रहेगा जिससे पाठकगण समझते रहें कि सद्गुरुदेव कौन होता है और उनके कार्य किस प्रकार के हुआ करते हैं।

परम गुरुदेव योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

ईश्वर की भांति महायोगियों का जन्म और कर्म भी दिव्य होता है। इस दिव्यता का ज्ञान जिसको हो जाता है वह भी दिव्य हो जाता है। योग अमृत व अमर विद्या है इस विद्या के ज्ञान लेने पर मनुष्य जन्म मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है। त्रिविध ताप से मनुष्य को मुक्त करने के लिए समय–समय पर ईश्वर का योगियों के रूप में अवतरण होता रहता है। ऐसे ही महायोगियों में सृष्टि के आदि से अन्त तक हिमालय में अजर अमर रहकर वास करने वाले दिव्य महापुरुष योग विधि से निर्माण काय करके पृथ्वी पर आये हैं जिनका परम पावन नाम प्रभु रामलाल जी है। वे एक ही समय में अनेक शरीर धारण कर (काय निर्माण) योग विद्या के प्रचार–प्रसार करने के लिए प्रकट होते रहते हैं। आप अपने भक्तों में भगवान् महादेव के रूप में सर्वत्र पूजित हैं।

आपका अवतरण पंजाब के अमृतसर नगर में स्वनाम धन्य ज्योतिर्विद् पं. गण्डाराम जी के पवित्र घर में हुआ। श्रीमाता जी का नाम भागवन्ती देवी हुआ। पिताश्री को आप की जन्म कुण्डली को देखकर ही आप के महायोगी होने का ज्ञान हो गया था। आपके पूर्वज भी बहुत शक्ति सम्पन्न महापुरुष हो चुके हैं जो अपने संकल्पमात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से अग्नि प्रज्वलित कर देना, वर्षा करा देना आदि अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न थे। इसी दिव्य कुल में आप का अवतरण हुआ है। नित्य ही अपने शाश्वत स्वरूप में अवस्थित रहने वाले ये महायोगी दयार्द्र होकर सद्गुरु के रूप में आकर योग विद्या का दान देते हैं। शैशवावस्था में ही आपके कार्य अलौकिक थे, चमत्कारिक थे। चौदह वर्ष की अल्पायु में ही विद्याध्ययन के बहाने से घर से निकल पड़े थे और सर्वप्रथम कुरुक्षेत्र पहुँचे। वहाँ सभी लोगों ने आपके कई चमत्कार देखे। फलित ज्योतिष का ज्ञान अद्भुत था। गुरुजन भी आपकी अप्रतिमप्रतिभा से आश्चर्य चकित थे और आप को महान योगी के रूप में देखते थे। यहाँ से आप श्री काशी जी आ गये। वहाँ भी धार्मिक समाज में भ्रष्टाचार तथा कुरीतियाँ फैली हुई थीं उन कुरीतियों का अपनी योग शक्ति से दमन किया। तान्त्रिक, मान्त्रिक आपके सामने नतमस्तक हुए। कुछ वर्ष वहाँ रहने के बाद आप श्री वृन्दावन धाम पहुँचे। वहाँ भगवान् की दिव्य लीला स्थली के दर्शन किये। तत्पश्चात् आगरा जिले में बरहन गाँव में पहुँच गये। वहाँ पर एक भक्त ठाकुर दास के यहाँ कुछ दिन रहे। वहाँ पर आपकी अलौकिक कृपा लोगों पर बरसने लगी। जो मुख से निकल जाता वही बात पूरी होती। लोगों को मुँह माँगा वरदान मिला। आपके दिव्य सानिध्य को पाकर सभी कृतकृत्य हुये। यहाँ से आगे आप संवाई आश्रम आये, यहाँ प्यारे लाल आदि आपके भक्त बन गये। यहाँ पर आपकी कृपा वर्षा होने लगी। भक्तों ने आपके लिये एक गुफा का निर्माण कर दिया। आपको अपने गुरुदेव का नेपाल में जाकर दर्शन करना था। अतः आप बन्द गुफा से सूक्ष्म रूप में निकल कर आकाश मार्ग से नेपाल की ओर चल पड़े। गाँव के

एक किसान ने आपको उड़ते देखा तो भययुक्त होने लगा। श्री प्रभुजी ने ऊपर से ही नाम लेकर उसे आशीर्वाद दिया और अपने नेपाल गमन की बात बताते हुए आगे निकल गये। नेपाल में अपने गुरुदेव सदाशिव के पास कई वर्ष रहे। फिर उनकी आज्ञा से आप पुनः भूमण्डल पर आ गये और संस्कारी बच्चों को ध्यानयोग के दिव्य ज्ञान का उपदेश किया। आपने देखा कि कलयुग के ये प्राणी क्षीणवीर्य एवं अल्प वीर्य होते जा रहे हैं। इसलिए आपने अपने मन से जीवन तत्व साधन, अमर तत्व साधन एवं फलतत्व आदि अनेक अद्‌भुत साधनों का आविष्कार किया। इन साधनों को करने से साधकों की जठराग्नि प्रदीप्ति होती है, शरीर में रसरक्त का नवनिर्माण होता है फलतः कायाकल्प हो जाता है इसी से कुण्डलिनी जागरण की स्थिति भी आ जाती है। मानव मात्र के लिए ये क्रियायें उपयोगी हैं। नेति आदि षटकर्मों का अभ्यास आश्रमों में कराया जाने लगा। इन क्रियायों का निःशुल्क प्रशिक्षण देकर साधकों को स्वस्थ जीवन प्रदान किया। आपके कई शक्ति सम्पन्न विरक्त योगी हुए। जिन्होंने बाद में योग का बहुत प्रचार किया।

योग विद्या आत्मशक्ति अर्जन का मुख्य उपाय है। योग ही मनुष्य के तन–मन को पवित्र करने वाली विद्या है। अनादि काल से ऋषियों ने इस विद्या को आत्मसात किया और परम पद के अधिकारी बने। सिद्धयोग की प्राचीन परम्परा को आपने पुनर्जीवित किया है। आपके प्रमुख शिष्यों में योगीराज मुलखराज जी, ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी, योगीराज चन्द्रमोहन जी, योगीराज नृसिंह मूर्ति जी तथा माता द्रोपदी देवी जी एवं ऋषि देवी जी उल्लेखनीय हैं। श्री प्रभु जी के इन महान शिष्यों ने योग विद्या का बहुत प्रचार किया और योग के अन्तरंग गूढ़ रहस्यों का ज्ञान अपने अधिकारी शिष्यों को दिया। योग से कितनी बड़ी–बड़ी शक्तियां इस कलिकाल में भी प्राप्त हो सकती हैं। इस बात को सभी को दिखा दिया। श्री प्रभु जी के शिष्य प्रशिष्यों के देश–विदेश आश्रम तथा योग केन्द्र खुले हुए हैं। योगीराज गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज श्री प्रभु जी के योग्यतम शिष्यों में एक हुए हैं। जिन्होंने अपने शिष्यों को ध्यान योग व राजयोग के अनुपम मार्ग का पथिक बना दिया है। अन्तरानुभूतियों के द्वारा वे योग के यथार्थ स्वरूप को जानने लगे। गुरुगीता में गुरुदेव का जो स्वरूप दर्शाया हुआ है श्री प्रभु जी का वही स्वरूप है। उनके अनुयायी उनके दिव्य ज्ञान से स्वयं भी परिपूरित हो रहे हैं तथा इस ज्ञान से और को भी आलोकित कर रहे हैं। जैसे एक ज्योति से अनन्त ज्योतियाँ जलती हैं, ऐसे ही योग की ज्योति हर घर में प्रकाशित हो रही है। गुरुदेव अपने शिष्यों के हृदयस्थ अज्ञानग्रन्थि का भेदन करने वाले होते हैं। श्री प्रभु जी अपने बच्चे के अज्ञानतिमिर का नाश करते हैं और आत्मज्ञान प्रदान करते हैं। सद्‌गुरु के इस उपकार के कारण ही गुरुगीता में आया है। ***यावत् कल्पान्तको देहः तावत् देवि गुरुं स्मरेत्।।*** अर्थात् जब तक शिष्य का शरीर विद्यमान है तब तक उसे श्री गुरुदेव का स्मरण करते रहना चाहिए।

परम गुरुदेव आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का शुभ 126 वाँ प्राकट्य दिवस उनके सब दिशाओं में फैले हुए शिष्यों के द्वारा धूम धाम से मनाया जा रहा है। श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम में यह उत्सव 6,7 व 8 अप्रैल, 2014 को बड़े ही धूमधाम से मनाया जा रहा है। उनके इस पावन प्राकट्य पर्व पर सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

प्राणायाम

– गोरक्षपीठ उत्तराधिकारी योगी आदित्यनाथ जी महाराज

श्वास–प्रश्वास की स्वाभाविक गति को अवरुद्ध कर शास्त्रीय विधि से श्वसन की क्रिया प्राणायाम कहलाती है। 'प्राणायाम' शब्द से ही स्पष्ट है प्राण–आयाम अर्थात् प्राण का आयाम अथवा विस्तार। प्राणायाम वह क्रिया है जिसमें प्राणिक ऊर्जा का शरीर में अधिक से अधिक विस्तार हो सके। प्राण 'वायु' का सूक्ष्म रूप है, जो सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। प्राण ही मन और आत्मा के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। 'मन' स्थूल शरीर का अंग है तो 'आत्मा' सूक्ष्म शरीर का। जब प्राण शरीर से अलग हो जाता है तब सूक्ष्म शरीर (आत्मा) भी शरीर से अलग हो जाती है और जीव की मृत्यु हो जाती है।

प्राण ही शरीर की सभी प्रकार की क्रियाओं का संचालन करता है। शरीर के अन्दर अलग–अलग स्थान एवं कार्य की दृष्टि से यही विभिन्न नामों से जाना जाता है जिन्हें पंच प्राण कहते हैं। ये पंच प्राण इस प्रकार हैं – 1. प्राण, 2. अपान, 3. उदान, 4. समान, 5. व्यान।

1. प्राण – श्वसन की क्रिया में श्वास के साथ जो वायु अन्दर जाती है वह 'प्राण' कहलाती है। यह शरीर की मांसपेशियों की कार्यशीलता व शक्ति को बढ़ाती है। शरीर में इसका स्थान हृदय में है।

2. अपान – श्वसन की क्रिया में जो वायु नाक, मुँह अथवा गुदा द्वार से बाहर निकलती है उसे 'अपान' कहते हैं। इसके द्वारा आँतों को बल मिलता है। यह उपस्थ एवं मूत्रेन्द्रिय की क्रियाओं को संचालित करती है इसका स्थान नाभि प्रदेश के नीचे स्थित है।

3. उदान – वह वायु जो कंठ के ऊपर के अंगों पर नियंत्रण रखती है उदान वायु कहलाती है। यह नेत्र, नासिका, कान, मस्तिष्क आदि की कार्यशीलता व शक्ति को बढ़ाती है।

4. समान – वह वायु जिसके माध्यम से सभी प्रकार की प्राण शक्तियों का संचालन एवं नियोजन होता है वह समान वायु कहलाती है। यह वायु यकृत, आंत, क्लोम, जठराग्नि व पेट में रसस्राव को प्रेरित एवं नियंत्रित करती है यह हृदय तथा परिभ्रमण संस्थान को भी क्रियाशील रखता है और इसका स्थान शरीर में छाती व नाभि का मध्यवर्ती प्रदेश है।

5. व्यान – यह वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। इसका मुख्य कार्य जठराग्नि एवं चयापचय क्रिया का संचालन है। उपरोक्त पंच प्राणों के अतिरिक्त पाँच उपप्राण भी हैं जो शरीर की छोटी–छोटी क्रियाओं को सम्पादित करते हैं। ये हैं –

1. देवदत्त – छींकना,

2. नाग– पलक झपकाना,

3. **कृकल** – जंभाई लेना,

4. **कूर्म** – खुजलाना,

5. **धनंजय**–हिचकी लेना आदि।

प्राण का सम्बन्ध सूक्ष्म एवं स्थूल शरीर में होने के कारण सभी इन्द्रियों तथा मन का संचालन भी 'प्राण' की क्रिया पर निर्भर करता है। अर्थात् अगर प्राण पर नियंत्रण हो जाय तो स्वतः ही मन तथा अन्य इन्द्रियों पर नियंत्रण हो जायेगा। प्राणायाम के द्वारा 'प्राण– पर नियंत्रण स्थापित कर 'मन' की सूक्ष्म तथा चंचल वृत्तियों को नियंत्रित किया जा सकता है। महर्षि पतंजलि प्राणायाम के सम्बन्ध में कहते हैं–

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

अर्थात् आसन के स्थिर होने पर श्वास–प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है। नासिका से वायु अन्दर खींचना श्वास कहलाती है तथा नासिका से वायु बाहर छोड़ना प्रश्वास कहलाती है। प्राणायाम में श्वास अन्दर लेना, श्वास को अन्दर अथवा बाहर रोक कर रखना तथा श्वास को बाहर छोड़ना तीन क्रियायें होती हैं। श्वास को अन्दर लेने की क्रिया **पूरक**, श्वास रोकने की क्रिया **कुम्भक** तथा श्वास बाहर छोड़ने की क्रिया **रेचक** कहलाती है। महर्षि पतंजलि ने भी प्राणायाम के भेद के सम्बन्ध में स्पष्ट किया है –

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः।

अर्थात् प्राणायाम बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृत्ति और स्तम्भवृत्ति भेद से तीन प्रकार का होता है। देश, काल और संख्या से देखा हुआ (नापा), लम्बा और हल्का (दीर्घ सूक्ष्म) होता है।

बाह्यवृत्ति–प्राणायाम – श्वास को बाहर निकालना, इसे **'रेचक'** कहते हैं।

आभ्यन्तरवृत्ति–प्राणायाम – श्वास को अन्दर लेना, इसे **'पूरक'** कहते हैं।

स्तम्भवृत्ति–प्राणायाम – श्वास–प्रश्वास दोनों की गति को रोक देना, इसे **कुम्भक** कहते हैं।

'पूरक' में एक मात्र श्वास लेकर मूलाधार तक श्वास को ले जाना **'कुम्भक'** में चार मात्र श्वास को नाभि स्थल में रोकना तथा **'रेचक'** में दो मात्र में नासिका तक श्वास को छोड़ना विहित है। प्राणायाम की इस क्रिया को एक निश्चित संख्या में करना ही देशकाल संख्या परिदृष्ट कहलाता है। देशकाल संख्या की दीर्घसूक्ष्म जानकारी के लिए जब 'रेचक' की क्रिया में नासिका के सामने लगभग 12 अंगुल की दूरी पर पतली रूई रखने से अगर रूई हिलाने लगे तो रेचक दीर्घसूक्ष्म होता है। पूरक की क्रिया में श्वास लेने पर शरीर में हल्की सनसनाहट का अनुभव हो तो 'पूरक' दीर्घसूक्ष्म होता है। कुम्भक की क्रिया में स्थिरता बनी रहती है। श्वास–प्रश्वास की गति को 36 मात्र तक (1 मात्र हाथ को घुटने से चारों ओर घुमाकर एक चुटकी बजा देने में जितना समय लगे उसे कहते हैं) तथा 36 संख्या तक ले जाने पर ही दीर्घसूक्ष्म होता है।

सामान्य स्थिति में मनुष्य जो श्वास छोड़ता है उसकी लम्बाई 6 अंगुल होती है। विभिन्न क्रियाओं के समय श्वास छोड़ने की लम्बाई इस प्रकार होती है –

सामान्य अवस्था – 6 अंगुल

गायन काल – 16 अंगुल

घूमते समय – 24 अंगुल

व्यायाम के समय – 36 अंगुल

भावनात्मक तनाव की अवस्था – 12 अंगुल

भोजन करते समय – 20 अंगुल

सोते समय – 30 अंगुल

काम क्रिया के समय – 36 अंगुल

किसी भी जीव की आयु उसके श्वास की क्रिया पर निर्भर करती है। यदि जीव के श्वास की लम्बाई व गति कम है तो वह दीर्घायु होता है और यदि जीव के श्वास की लम्बाई व गति तेज हो तो वह अल्पायु होता है। प्राणायाम का नियमित अभ्यास श्वास की लम्बाई व गति को कम करने में सहायक है जो शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के साथ दीर्घायुष्य में भी सहायक है। प्राणायाम के अभ्यास से श्वास–प्रश्वास की लम्बाई व गति को नियंत्रित करना चाहिए। प्राणायाम का अभ्यास करने से पूर्व निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। घेरण्ड संहिता में इस सम्बन्ध में लिखा है –

आदौ स्थानं तथा कालं मिताहारं तथा परम्।
नाड़ी शुद्धिश्च तत् पश्चात् प्राणायामं च साधयेत्।।

अर्थात् प्रथमतः स्थान, काल, मिताहार और नाड़ी की शुद्धि करें। इसके पश्चात् प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

प्राणायाम का स्थान – प्राणायाम का अभ्यास एकान्त, शुद्ध वातावरण तथा सुरक्षित स्थान पर करना चाहिए। दूर देश, अरण्य, कोलाहल की जगह तथा गन्दगी की जगह, धूल–धुँए वाली जगह पर प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

काल – नये साधक के लिए बसन्त और शरद ऋतु उपयोगी है। अनुभवी साधक के लिए कोई बन्धन नहीं। प्राणायाम का अभ्यास सूर्योदय से पूर्व है। नित्य–क्रिया से निवृत्त होने के बाद सबसे पहले आसन करें तत्पश्चात् प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

आहार– साधक का आहार शुद्ध एवं सात्विक होना चाहिए। मद्य, मांस, चटपटा, गरिष्ठ, बासी, उत्तेजक, कटु और खट्टे पदार्थों का आहार त्याग करें।

नाड़ीशुद्धि– कुश का आसन, मृगछाला अथवा कम्बल में से किसी आसन पर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके नाड़ी शुद्धि होने पर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। नाड़ी शुद्धि

के दो साधन हैं –

1. षट्कर्म द्वारा

2. बीजमंत्र द्वारा

आसन – प्राणायाम का अभ्यास करने के लिए **पद्मासन, सिद्धासन, स्वास्तिकासन** अथवा **सुखासन** ये चार मुख्य आसन हैं। उक्त चार आसनों में से किसी में बैठकर रीढ़ की हड्डी सीधी रखें आसन दृढ़ एवं स्थिर रहना चाहिए।

प्राणायाम की मुद्रा – प्राणायाम के किसी भी आसन में बैठकर बायें हाथ को बायें पैर के घुटने पर रखें। दायें हाथ की मध्यमा और तर्जनी अँगुली को मोड़कर अंगुष्ठ, अनामिका और कनिष्ठा को खुली रखें। जब नासिका के दायें छिद्र को बंद करना हो तो अंगुष्ठ से और बायें छिद्र को अनामिका अँगुली से बंद करें। यदि दोनों नासिका छिद्र बन्द करने हों तो अंगुष्ठ और अनामिका से बन्द करें।

प्राणायाम से लाभ –

1. प्राणायाम के अभ्यास से शरीर की ऑक्सीजन लेने की क्षमता बढ़ती है जिससे शरीर के सभी अवयव एवं रक्त संचार आदि के संस्थान सक्रिय व तेज होते हैं तथा शरीर पुष्ट, स्वस्थ एवं क्रियाशील बनता है।

2. प्राणायाम के अभ्यास से नाड़ी शुद्धि होती है। ऑक्सीजन पर्याप्त मात्रा में मिलने पर रक्त शुद्ध होता है। रक्त शुद्धि से शरीर शोधान स्वत: हो जाता है।

3. प्राणायाम के अभ्यास से श्वास–प्रश्वास की स्वाभाविक गति को अवरुद्ध कर प्राण पर नियंत्रण किया जा सकता है। प्राण पर नियंत्रण होने से मन पर स्वत: नियंत्रण हो जाता है।

4. प्राणायाम के अभ्यास से मन की चंचलता पर नियंत्रण स्थापित करके मस्तिष्क की कार्यक्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

5. प्राणायाम के अभ्यास से शरीर में स्थित अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के साथ–साथ विभिन्न शक्ति केन्द्रों को जागृत कर साधक अपनी आन्तरिक प्रतिभा का जागरण कर सकता है।

प्राणायाम के लिए आवश्यक सावधानी –

प्राणायाम का अभ्यास करने से पूर्व कुछ आवश्यक सावधानी आवश्यक है।

1. प्राणायाम का अभ्यास सुरक्षित, एकान्त तथा स्वच्छ जगह पर ही करना चाहिए।

2. प्राणायाम का अभ्यास समतल जमीन अथवा चौकी पर कम्बल बिछाकर करें।

3. प्राणायाम का अभ्यास एक निश्चित आसन में शान्त मन से करना चाहिए।

4. रोग की अवस्था में तथा गर्भवती महिलाओं को प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

योगदर्शन और चक्रसाधना

– आचार्य प्रतापादित्य, गोरखपुर

योग एक प्रगतिशील विज्ञान है और योगदर्शन अनुभवात्मक कथा। **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' – से संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मापरमात्मनः'** – उसी प्रगतिशील विज्ञान की यात्रकथा के श्रीगणेश और अन्त की दो बिन्दु हैं। किन्तु जीवात्मा और परमात्मा का एकीकरण उद्देश्य और विधेय दोनों है। जीवात्मा अगणित मुकुरों में प्रतिफलित एक परमात्मा की छाया है, जिनका अस्तित्व विशेष–विशेष प्रकार के दर्पणों के कारण है। यह दर्पण है 'मन'। मन का लय (समाप्ति नहीं) होने से प्रतिफलित सत्ता अपना अस्तित्व खो देती है और यही है जीवात्मा और परमात्मा का मिलन। जीवात्मा मन से बाधित न भी होते हुए 'कैटेलिटिक एजेन्ट' अथवा संयोगवाही रसायन की भांति काम करता है और यही उसका बन्धन है। मन की मुक्ति इसीलिए उसकी मुक्ति होती है और इस प्रकार मन और जीवात्मा दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रहता है। इसी कारण आध्यात्मिक साधना का सम्बन्ध मन और केवल मन से है। शास्त्र कहते हैं –

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धस्य विषयासंगि मुक्तो निर्विषयं तथा।।

इसीलिए मन की साधना के अतिरिक्त शेष साधनाओं का मूल्य शिव की दृष्टि में कुछ भी नहीं है –

मनोन्यत्र शिवोन्यत्र शक्तिः अन्यत्र मारुतः।
नहि सिद्धसति वरारोहे कल्पकोटिशतैरपि।।

किन्तु यदि मन का आध्यात्मिक साधना में इतना अधिक महत्व है तो फिर मन है क्या और उसकी साधना क्या है? इस प्रश्न का उत्तर ही वास्तव में चक्रसाधना का रहस्य है।

चक्रों का अर्थ शरीर के वे केन्द्र–बिन्दु हैं, जो मन की गति और उसकी चंचलता को नियन्त्रित और उसका उदात्तीकरण करने में सहायक होते हैं। मनुष्य के शरीर में आठ चक्र माने गये हैं, जिनके नाम हैं, **मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, शतदल और सहस्त्रदल।** नामभेद से और कहीं संख्याभेद से सभी प्रकार की साधनाओं में इन्हीं चक्रों का प्रयोग होता है। आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से भी यही स्थान मन के नियंत्रण करने वाले होते हैं और इन्हीं चक्रों के पास की बिन्दुओं का आधुनिक नाम है – **'पेल्विक प्लेक्सस', हाइपोगेरिट्रक प्लेक्सस, इक्वीगेस्ट्रिक प्लेक्सस, कार्डियक प्लेक्सस, कैरोटिड प्लेक्सस, मेडुला आब्लैंगेटा और पीनियल ग्लैंड।'** मन को पचास वृत्तियों का समुच्चय कहा जाता है। जो अपनी अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी गतियों के कारण सौ और दस इन्द्रियों द्वारा कार्यरत होने के

कारण एक हजार वृत्तियों का रूप बना लेता है। यह चक्र इन वृत्तियों को नियंत्रित करते हैं। चक्रसाधना इन्हीं चक्रों पर गुरुप्रदत्त **मंत्र–चैतन्य और दीपनी शक्ति** द्वारा अभिमंत्रित मंत्र का मन द्वारा 'प्राण' और 'वायु' की सहायता से भावात्मक पुरश्चरण है। विशेष प्रमुख वृत्ति को, जिससे मनुष्य का अपना व्यक्तित्व शेष–मानव–समुदाय से पृथक् होता है, प्रारम्भिक साधना में नियंत्रित करना पड़ता है, क्योंकि तभी मन एक सन्तुलित अवस्था में आता है। बिना इस सन्तुलन के आध्यात्मिकता की यात्रा का प्रारम्भ ही नहीं होता है। इस प्रमुख वृत्ति को नियंत्रित करने के लिए सद्गुरु उस चक्र विशेष का निर्देश करते हैं, जिसके द्वारा यह वृत्ति विशेष नियंत्रित होती है। उस चक्र विशेष को **'इष्ट मंत्र'** कहा जाता है। चक्र विशेष की इस प्रारम्भिक साधना को **ईश्वर प्रणिधान** कहते हैं। यह प्रक्रिया है, सिद्धान्त अथवा दर्शन नहीं। जब इस साधना द्वारा साधक का मन सन्तुलित होने की एक विशेष अवस्था में पहुँच जाता है, तो फिर उसे चक्र विशेष पर प्राणशक्ति का प्रयोग करने की प्रक्रिया बतायी जाती है, जिसे **प्राणायाम** कहते हैं। इसके बाद एकाधिक चक्रों पर अथवा सभी चक्रों पर आवश्यकतानुसार इष्ट मंत्र द्वारा पुरश्चरण की व्यवस्था बतायी जाती है। प्रारम्भिक स्तर पर इस साधना के पूर्व इन चक्रों की स्थिति और कार्य प्रणाली की शुद्धि–परिशुद्धि के लिए इन चक्रों का शोधन किया जाता है, जिसे **चक्रशोधन** कहते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा मन को चंचल बनाने वाली वृत्तियों और उसके पीछे के संस्कारों का नियमन होता है और इड़ा और पिंगला का सुषुम्ना पर कसाव कम होने के कारण मूलाधार स्थित **कुलकुण्डलिनी** ऊर्ध्वगामी होती है। विभिन्न चक्रों पर विभिन्न रहस्यात्मक अनुभूतियों का आस्वाद लेते हुए साधक अपनी जीवचेतना को परम शिव में समाहित कर देता है। जब तक यह मिलन अस्थायी होता है, तब तक वह है मुक्ति अथवा **सविकल्प समाधि** और जब यही स्थायी हो जाता है, तब वह है मोक्ष अथवा **निर्विकल्प समाधि।**

चक्रसाधना का यह आभ्यन्तरीण स्वरूप परवर्ती काल में पौराणिक परम्परा से प्रभावित होने पर बहिर्मुखी हो गया और तब बिना उस आभ्यन्तरिक साधना के वह मात्र बाह्योपचार बन कर रह गया। ऐसी ही स्थिति के लिए शिव ने कहा था –

इदं तीर्थ इदं तीर्थं भ्रमन्ति तामसा जनाः।
आत्मतीर्थं न जानन्ति कथं मोक्षो वरानने।।

प्रायः यह बाह्य साधना मुक्ति की साधना न बन करके मात्र भुक्ति की साधना बन गयी और तब तंत्र–साधना जनसामान्य में अपना गौरवशाली रूप छोड़कर श्रद्धा के स्थान पर भय और घृणा का आधार बन गयी।

चक्र–साधना का ही सम्बन्ध तत्वधारणा नाम की प्रक्रिया से भी है। चक्रों के पीठ उनके आधार होते हैं और यह पीठ अपने आकार और अपने विशेष **वर्ण** से जाने जाते हैं। अपने आकार विशेष और वर्ण विशेष के द्वारा जब उपयुक्त मंत्र से यह पीठ उपचारित होते हैं तो ये पंचमहाभूतों को नियंत्रित करने की विलक्षण शक्ति देते हैं। प्राचीनकाल में यह साधना श्मशान

साधना का अंग थी, किन्तु अब सद्गुरु आधुनिक काल में घर में सहज रूप में यह साधना उपलब्ध करा चुके हैं। इस साधना का ध्यानमंत्र स्वरोदयशास्त्र (शिवस्वरोदय) में प्राप्त होता है, किन्तु साधना के लिए विशेष कौशल सद्गुरु ही बताते हैं।

प्राणायाम में प्राणशक्ति को मंत्र के सहारे श्वास से सम्बद्ध करके विशेष–विशेष चक्रों में स्थित कर देने से नाड़ियों का शोधन हो जाता है और धारणा, ध्यान और समाधि की क्षमता प्राप्त हो जाती है। वास्तव में साधना मात्र चक्र–साधना से किसी–न–किसी प्रकार जुड़ी होती है। क्योंकि चक्र ही मन की अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी गतियों का नियंत्रक होता है, इसलिए जो भी भाव मन को प्रभावित करेंगे, उन्हें उन्हीं चक्रों के सहारे मन तक पहुँचना होता है। बहिरंग साधना में मन की एकाग्रता का पर्याप्त अवसर नहीं रहता है। **'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'** के सिद्धान्त के अनुसार बाह्य साधना में मन का स्थूलीकरण होते रहने के कारण वह मन के उदात्तीकरण का आधार नहीं बनता, फिर भी बहिरङ्ग साधना में, भजनपूजन में यदि मन की एकाग्रता उपलब्ध हो जाय, तो यह चक्र आन्दोलित हो जाते हैं और इस प्रकार की साधना में कुछ हद तक आध्यात्मिक अनुभूतियाँ अवश्य ही होती हैं, किन्तु इस प्रकार की साधना में भी चक्रों का ही योगदान अवश्य होता है। अतः वह भी चक्रसाधना के ही एक रूप बन जाते हैं। यदि भजनपूजन या कोई भी साधना मन की एकाग्रता और तज्जन्य सूक्ष्मभाव संवेदनाएँ उत्पन्न नहीं कर सके तो चक्र उनसे प्रभावित नहीं होते और चक्रों के अप्रभावित रहने से आध्यात्मिक अनुभूतियाँ किंवा आध्यात्मिक उपलब्धियाँ आकाश कुसुम ही बनी रहती हैं। यदि किसी क्रिया का प्रभाव चक्रों पर नहीं पड़ता तो सुप्त जीवशक्ति, चैतन्य सत्ता जागृत नहीं हो सकती और ऐसी क्रिया अथवा क्रियाओं को, जो कुछ भी क्यों न कहा जाय, आध्यात्मिक साधना के नाम से अभिहित नहीं किया जा सकता। वेद का कथित **गायत्रीमंत्र** अथवा कुरानशरीफ का **'मीराज'** चक्रों के जागरण और लोकोत्तर अनुभूतियों का सूत्र है, जो वेदों से लेकर कुरान शरीफ तक की साधना की एकसूत्रता का स्पष्ट प्रमाण देता है। बौद्धतंत्र और वैष्णवतंत्र भी इस विषय में एक ही प्रक्रिया के प्रमाण हैं।

चक्र–साधना का यह एक पक्ष 'व्यक्तिगत' पक्ष कहा जा सकता है, किन्तु चक्र–साधना का एक सामाजिक पक्ष भी होता है। पूर्णावतार के रूप में अधर्म का नाश और धर्म की प्रतिष्ठा के लिए कालचक्र की सहज गति को त्वरित विकास देने के लिए समाज को परिचालित करने जब सद्गुरु रूप में ब्रह्म रूप ग्रहण कर लेते हैं तो चक्रसाधना का सामाजिक रूप भी स्पष्ट होता है। वह स्वयं तथा अपने को अनेक अंशों में प्रकट करके प्रकट और प्रच्छन्न, दोनों प्रकार से लीलाएँ करते हैं। इसी लीला के माध्यम से आत्महीनता से ग्रस्त मानवता को आत्मसम्मान का भूला–बिसरा पाठ पढ़ाते हुए पापशक्ति के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए ललकारते हैं और अन्ततः बन्दर–भालुओं के समान अति साधारण माध्यमों से चमत्कार करते हुए धर्म की प्रतिष्ठा करते हैं।

इसे हम समाज की चक्रसाधना कह सकते हैं। समाज का अपना एक व्यक्तित्व होता है, यह 'व्यक्ति' सामान्यतया अनेकानेक संस्कारों से प्रभावित तथा उनसे ओतप्रोत होने के कारण मुक्तिलाभ करने में कठिनाई अनुभव करता है, इसलिए समाज के केन्द्र–बिन्दु को परिवर्तित करना आवश्यक हो जाता है, इसीलिए सद्‌गुरु समाजसेवा को साधना की आवश्यक शर्त बना देता है, वह साधना समर में गीता का उपदेश देकर अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार करता है। फिर ध्वंस और निर्माण के बीच में समाज–चेतना को झकझोरते हुए समष्टि को हठात सालोक्य से **सार्ष्टि** भाव में पहुँचा देता है। ऐतिहासिक दृष्टि से सदाशिव ने समाज को पशुभाव की विच्छिन्नता से मानवीय छन्दोबद्धता का भाव दिया था। कृष्ण ने पापशक्ति के विरुद्ध एक सामाजिक संघर्ष का वातावरण तैयार किया और समाजचेतना को सहसा ही सालोक्य से 'सार्ष्टि में पहुँचा दिया। सुदर्शनचक्र का यही स्वरूप था। **व्यक्तिगत क्षेत्र में कृष्ण ने जो आध्यात्मिकता बांसुरी की मधुर ध्वनि से पैदा की थी, सामाजिक क्षेत्र में उसे ही उन्होंने कर्णभेदी पांचजन्य के माध्यम से सम्भव किया।** जो साधक व्यक्तिगत और सामाजिक, दोनों क्षेत्रों में जागरुक है, वह एक कान में बांसुरी और दूसरे में पांचजन्य का स्वर आज भी सुन रहे है और कालरात्रि के बाद के अरूणोज्जवल प्रकाश की ओर टकटकी लगाये बैठे हैं। यह प्रतीक्षा भी उसी चक्रसाधना का एक अध्याय है तथा वह **'आत्म–मोक्षार्थ जगत् हिताय च'** के आदर्श की ओर निष्ठापूर्वक आगे और आगे बढ़ता ही जा रहा है। उसकी साधना आज श्मशान से जीवन की ओर, जंगलों से समाज की ओर और व्यष्टि से समष्टि की ओर मुड़ गई है। उसके लक्ष्य सम्पूर्ण शिव के केन्द्र **पुरुषोत्तम** हैं। उनको पाने के लिए जिस प्रकार वह आभ्यन्तरिक जगत् में संघर्ष करता है अपनी आन्तरिक पशुवृत्तियों के विरुद्ध भी उतनी ही प्रबलता से संघर्षरत है। उसका यह द्विमुखी संघर्ष ही उसकी सन्तुलित एवं निश्चिन्त आध्यात्मिक जीवन की अन्तर्मुखी चक्र–साधना तथा बहिर्मुखी चक्रसाधना का रहस्यमय पथ है, जिसका लक्ष्य स्वयं तथा समाज दोनों की जैवी सत्ता को शिव में प्रतिष्ठित करना है। बिना चक्रसाधना के इस प्रगतिशील दर्शन और विज्ञान को समझे और बिना चक्रसाधना की इस द्विमुखी प्रक्रिया को अपनाये, आध्यात्मिक उपलब्धि आज के मनुष्य के लिए कीलित है।

अद्यैव कुरु यच्छ्रेयोवृद्धः सन् किं करिष्यति।
स्वगात्राण्यपि भाराय भवन्ति हि विपर्यये।।

–योग वाशिष्ठ

जो कल्याणकारी वस्तु है उसे आज ही प्राप्त करने का प्रयत्न करें। वृद्ध होने पर क्या कर सकोगे। उस समय अपना शरीर ही अपने को भार रूप जान पड़ता है और शुभ कर्म करने के लिए उपयुक्त नहीं रहता।

जन्म दिवस पर विशेष

अखण्ड ज्योति महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं उनकी अचिन्त्य शक्ति

— कुँवर' ए.के. सिंह, एडवोकेट, कछवा, मीरजापुर

नमो योगरूपं नमो ब्रह्मरूपं, अनन्तं अकायं अभेद अनीहम्।
सदाबोध रूपं सकलव्याधिहरणं, प्रभु रामलालं नमामि नमामि।।

महर्षि पतंजलिदेव जी ने स्पष्ट रूप से योगदर्शन के साधनपाद में योगी के अधिकार की चर्चा की है –

परमाणु परममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः।। अर्थात् जिस समय योगी अपने चित्त को सूक्ष्म तत्व में लगाना आरम्भ करता है तो परमाणु पर्यन्त उसके साक्षात्कार का विषय बन जाता है। और यदि वह स्थूल की ओर बढ़ता है तो पंच महाभूत अहंकार और इन्द्रियों को देखता हुआ मूल प्रकृति पर्यन्त बढ़ जाता है। उसके अधिकार की सीमा इतनी ऊँची बढ़ जाती है कि वह संयम के बल से सभी कुछ करने की शक्तिवाला हो जाता है। वही योगी की अचिन्त्य शक्तियों का वर्णन करते हुए योग शिखोपनिषद् में प्रकरण मिलता है–

इच्छारूपो हि योगीन्द्रः स्वतन्त्रस्त्व जरागरः।
क्रीडते त्रिपु लोकेपु लीलया यत्रकुत्र चित्।।
अचिन्त्य शक्तिमान्योगी नाना रूपाणि धारयेत्।
संहरेच्च पुनस्तानि, स्वेच्छया विजितेन्द्रियः।।
नासौ मरणमाप्नोति पुनर्योग बलेन तु।
हठेन मृत एवासौ मृतस्य मरणं कुतः।।
मरणं यत्र सर्वेषां, तत्रासौ परिजीवति।
यत्र जीवन्ति मूढ़ास्तु, तत्रासौ मृत एव वै।।
कर्त्तव्यं नैव तस्यास्ति, कृतेनासौ न लिप्यते।
जीवन्मुक्तः सदा स्वच्छः, सर्व दोष विवर्जितः।।

अर्थात् योगीन्द्र लोग इच्छा रूप होते हैं। अपनी इच्छा से ही वे लोग तीनों लोकों में स्वतन्त्र गति से विचरते रहा करते हैं। उनकी शक्ति इतनी अद्भुत होती है कि उसको हर व्यक्ति सोच भी नहीं सकता। वे लोग एक क्षण में हजारों रूप बना लें और फिर उसका संहार भी कर दें। वे लोग हठ साधना के द्वारा अपने आपको मार लेते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे लोग फिर मरणधर्मा नहीं रहते। जो व्यक्ति अपने आपको हठ साधना के द्वारा मार लेता है उसका

फिर मरण नहीं होता। योगीन्द्र लोग विजितेन्द्रिय होते है। जिस वासना के गर्तो में सांसारिक लोग हर समय मरते रहते हैं वहीं पर योगीश्वर लोग सदा जीवित ही रहते हैं और जिन वासना क्षेत्रों के अन्दर दुनिया के लोग हर्षोल्लास के साथ भोगाशक्ति में अपने आपको जिन्दा रखते हैं वहीं पर वे यतीन्द्र लोग सदा सर्वदा मरे ही रहते हैं। ऐसे योगेश्वरों का कुछ भी कर्तव्य अवशिष्ट नहीं रह जाता। उन लोगों की स्थिति कर्म बन्धन से परे हो जाती है। वे लोग सदैव जीवन्मुक्त, स्वच्छ एवं दोष रहित होते हैं। ऐसे ही अन्यान्य स्थानों पर योगी की अद्भुत ऐश्वर्या का वर्णन हमारे शास्त्रकारों ने किया है।

नेपाल हिमालय एवं तिब्बत और भूटान की सीमास्थली हिमाच्छादित प्रदेश से हम पतितोद्धार हेतु उतर कर आने वाले अखिल ब्रह्माण्ड नायक, जगतनियन्ता, गुरुओं के महाप्रभु अखण्ड ज्योति प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की शक्तियों के बारे में कोई क्या वर्णन कर सकता है। महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज अनादि महासिद्ध हैं जो आज भी हिमालय में अनादि काल से हैं। श्री रामलाल जी महाराज के गुरुदेव भगवान सदाशिव महाराज हैं जो इन्हें नेपाल में मुंजश्वरी दुर्गा मन्दिर से आकाश मार्ग से हिमालय ले गये हैं। ये भगवान सदाशिव कौन? इस विषय में हमारे प्रातः स्मरणीय श्री गुरुदेव अनन्त विभूषित योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने गुरुभाईयों के साथ ऋषिकेश स्थित योग साधन आश्रम में अखण्ड ज्योति प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के साथ बैठे हुए थे, उस समय योगाधिपति गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने भगवान श्री शंकर जी का स्वरूप दिखाते हुए श्री प्रभु जी से प्रश्न किया कि क्या यही मेरे दादा गुरुदेव सदाशिव जी हैं। तो जगतनियन्ता सर्वाधार अखिल ब्रह्माण्ड नायक महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने कहा नहीं। भगवान सदाशिव तो इनके भी दादा गुरु हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जो शिव पार्वती हैं वे और हैं और भगवान सदाशिव और ही हैं। ये तो रही मेरे आराध्य श्री गुरुदेव योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं उनके श्री गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की वार्ता। मैं स्वयं बताऊं मैं उस समय इलाहाबाद में स्नातक का छात्र था। प्रयाग महामेले का शिविर चल रहा था। एक दिन सायंकाल का प्रवचन श्री गुरुदेव महाराज जी का चल रहा था। मैं दरबार से काफी दूर शाम के समय श्री गुरुदेव भगवान के आज्ञानुसार शिविर की निगरानी कर रहा था। किन्तु ध्यान श्री गुरुदेव भगवान के प्रवचन की ओर था। किसी प्रकरण की चर्चा चल रही थी। श्री गुरुदेव भगवान ने कहा मेरे दादा गुरुदेव श्री सदाशिव जी...। मैं तुरन्त मन में सोचा कि मेरे गुरुदेव के दादा गुरुदेव भगवान शंकर जी हैं। इतने में ही अन्तर्यामी मेरे श्री गुरुदेव भगवान आगे प्रकरण चलते हैं कि नहीं। ये शंकर हमारे दादा गुरुदेव नहीं हैं ऐसे हजारों शंकर को बनाने वाले मेरे दादा गुरुदेव भगवान सदाशिव हैं। तो मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जो शिव–पार्वती हैं वे और हैं और भगवान सदाशिव और हैं। तात्विक दृष्टि से देखा जाय तो भगवान सदाशिव का ही काया निर्माण शिव–पार्वती के रूप में है। जो जीवों पर कृपा बरसाते हैं। भगवान सदाशिव का स्वरूप गुणातीत होने के कारण शुद्ध

स्वरूप में अवस्थित रहता है। वही **अमर विद्या योग** के दाता हैं उन्हीं की आज्ञा से हमारे अखण्ड ज्योति सागर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज अपने काय–निर्माण से लगभग 20 शरीर का निर्माण कर इस अवनि मण्डल पर आये और अमर विद्या योग का प्रचार–प्रसार किया। अपने संस्कारी बच्चों पर कृपा कर योग योगेश्वर श्री गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के माध्यम में स्थित होकर हम सब को कृतार्थ किया। इस कलिकाल में शारीरिक मानसिक उत्थान के लिए अपने स्वयं द्वारा निर्मित जीवन तत्व साधन, फल तत्व एवं अमर तत्व साधनों का निर्माण कर उन्हें सांसारिक लोगों के बीच प्रचारित किया।

यद्यपि अखिल ब्रह्माण्ड नायक महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज नित्य, अनित्य हैं। कहने को तो सन् 1938 में अपने स्थूल शरीर का अन्त किया। किन्तु सन् 1968 की घटना है – मेरे श्री गुरुदेव योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का कार्यक्रम नेपाल काठमाण्डू में था। वहाँ पर प्रसिद्ध मंदिर पशुपतिनाथ जी के दर्शन कर श्री महाराज जी कई शिष्यों के साथ वही गौशाला में ठहरे थे। एक दिन दोपहर में एक योगी महात्मा श्री गुरुदेव भगवान के पास आया और प्रसाद की मांग की, श्री गुरुदेव भगवान जी ने उस महात्मा को मिठाई का डिब्बा एवं कुछ फल दिये। तो उस योगी महात्मा ने कहा कि महाराज जी ये मिठाई फल नहीं चाहिए। मुझे जो आप विशेष प्रसाद देते हैं वो चाहिए। श्री महाराज जी सर्वान्तयामी होते हुए पुनः प्रश्न किया कि लल्ला! कैसा विशेष प्रसाद? कहाँ से आये हो? उस योगी महात्मा ने कहा जिसकी आप आरती करते हैं, उन्होंने ही मुझे भेजा है। श्री गुरुदेव भगवान पुनः कहते हैं कि मैं किसकी पूजा करता हूँ क्या नाम है उनका? तो उस योगी महात्मा ने कहा श्री रामलाल जी महाराज नाम है। श्री गुरुदेव जी ने पूछा – तुम उन्हें कैसे जानते हो? तो उस योगी महात्मा ने कहा – वे मुझे अभी दो तीन महीने पहले जोगवनी के जंगलों में मिले थे। उनके साथ 6–7 साधु और थे। मैंने उन्हें चरणस्पर्श करना चाहा तो उन्होंने मुझे मना कर दिया तथा कहा कि – मेरा प्रिय बच्चा चन्द्रमोहन अभी कुछ दिन बाद समय बताया कि इस समय काठमाण्डू आयेगा और गौशाला में ठहरेगा, तुम उसके पास चले जाना, और उसी से प्रसाद लेना, उसके बाद से तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति एवं साधना में प्रगति होती रहेगी। उन्हीं की आज्ञा से आया हूँ। प्रसाद लेकर वहाँ से चल दिया, आगे चलकर पुनः अन्तर्ध्यान हो गया। मेरा तात्पर्य यह कि मेरे अखिल ब्रह्माण्ड नायक जगतनियन्ता महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का जन्म कब शरीरान्त कब। इसका तात्पर्य वे नित्य हैं। वे अनेकानेक रूप शरीर धारण कर इस संसार सागर में विचरण करते हुए संस्कारी आत्माओं का कल्याण करते रहते हैं और आज भी अधिकारी साधकों पर कृपा बरसा रहे हैं।

योगयोगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज जब श्री सिद्धगुफा सवांई आश्रम में निवास कर रहे थे, तो सवांई गांव एवं इधर उधर के लोग आकर सत्संग का लाभ लिया करते थे, एवं श्री प्रभु जी के अद्‌भुत दर्शन पाकर और अपने ऊपर अनेक प्रकार की कृपाओं को

देखकर यह होता था कि ये पूर्ण महापुरुष है। पुनः यह सोचते थे कि इनकी कुछ लीलाओं, चमत्कार को देखें। बार–बार प्रार्थना करते कि प्रभुजी कुछ चमत्कार दिखाइये। श्री प्रभु जी मना कर देते थे। भई क्या चमत्कार दिखाएँ, मन लगाकर भजन किया करो, तुम्हारे शरीर में अपने आप ही चमत्कार हो जायेगा। फिर भी लोग हठ किया करते थे। एक दिन, ये लोग हठ कर लिया कि आज कोई चमत्कार दिखाइये तभी हम लोग अपने–अपने घरों को जायेंगे। बार–बार कहने पर श्री प्रभुजी ने कहा कि अच्छा भाई तुम सब आँखें बन्द कर लो। एक बार आँखें बन्द करने के बाद उन्हें आज्ञा दी कि अब आँखें खोल दो। श्री प्रभुजी की आज्ञा पाकर जिस समय आँखे खोली तो बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उनको कुछ दिखलाई ही नहीं देता था न किसी की आवाज ही सुनाई पड़ती थी। न तो किसी का स्पर्श होता था। केवल महा अंधकार ही अन्धकार अनुभव होता था। कोई समय का ज्ञान नहीं और यह भी ज्ञान नहीं कि हम सब कहाँ हैं। थोड़ी देर इसी दशा में लोग रहे। उसके बाद अनुभव हुआ कि नीचे से जमीन खिसक गई है और यह लग रहा है कि प्रतिक्षण वे नीचे गिरते जा रहे हैं। उन्हें एक धुंधले से प्रकाश में यही अनुभव हो रहा था कि पता नहीं वे कितने गहरे गड्ढे में नीचे को चले जा रहे हैं। उनका मन यह अनुभव कर रहा है कि पता नहीं कितने कालों से हम नीचे को जा रहे हैं किन्तु कोई आधार नहीं मिल रहा है। किन्तु यह स्मृति थी कि हम लोगों ने बहुत बड़ा अपराध किया जो बाबा के सामने इतनी बड़ी हठ रख दी। अब हमें अपने घर बार बाल बच्चों स्त्री व जायदाद से कौन मिलवायेगा। ऐसी बात मन में स्मरण कर मन में श्री प्रभुजी के चरण कमलों का स्मरण कर ऊपर देखना चाहा तो ऊपर से बड़े–बड़े भयंकर फन वाले सांप उन्हीं की ओर दौड़े चले आते दिखाई पड़े। इस तरह का दृश्य देखकर बिल्कुल काँप गए एवं मन ही मन श्री प्रभु जी को स्मरण कर क्षमा मांगने लगे कि प्रभो ऐसी गलती अब कभी नहीं करूंगा। अब हमारी रक्षा कीजिए। उसी समय उन सब को एक वाणी सुनाई दी। जो श्री प्रभुजी की थी। श्री प्रभुजी ने कहा कि अच्छा अब डरो मत, आँखें बन्द करो। उन सबने आँखें बन्द कर ली, पुनः आज्ञा सुनी आँखें खोलो। उन सब ने आँखें खोली, आँखें खोलने पर उन लोगों ने देखा कि पूरा शरीर पसीने से तरबतर है। भय के मारे काँप रहे हैं। गले से आवाज नहीं निकल रही है। बड़ी कठिनता से शरीर में चेतन्यता लाते हुए धीरे–धीरे श्री प्रभुजी के चरण कमलों में प्रणाम करते हुए चुपचाप सवाई धाम से अपने–अपने घरों को चले गए, फिर दुबारा कभी चमत्कार देखने की हठ नहीं की। और गांव में घरों को जाकर यह चर्चा करने लगे कि ये कोई साधारण महात्मा नहीं बल्कि पूर्ण योग–योगेश्वर हैं। जिनकी लीलाएँ वर्णनातीत हैं। इन्हीं की आज प्राकट्य दिवस पर उनके चरण कमलों में कोटिशः दण्डवत्।

आनन्द मानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निज बोधरूपम्।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोग वैद्यं श्री सद्गुरु रामलालं नमामि।।
प्रभु श्री रामलालं नमामि नमामि .....

गुंजन

– डॉ. विजय सिंह

जगत में हर युग के प्राणियों को अपने कर्म के अनुसार जीवन, मरण और मरणोत्तर सदगति या अवगति प्राप्त होता है। कर्म के अतिरिक्त और कोई भी किसी को सुख–दुःख नहीं दे सकता। इस तरह सभी प्राणी अपने प्रारब्ध कर्म का ही उपभोग करते हैं। जिसे परम पद की प्राप्ति की चाह है, उसे सद्गुरु शरणापन्न होकर उनके बताये उपदेशानुसार अपनी मनोवृत्तियों को रोकने का प्रयास करते रहना चाहिए। जिसकी मनोवृत्तियाँ एकाग्रता को प्राप्त हो गयी हैं उन्हें अनाहद नाद का अनुभव होता है। बड़े–बड़े योगी उसी अनाहद नाद की उपासना करते आये हैं। जिसके प्रभाव से अन्तःकरण के द्रव्य (मन,बुद्धि, चित्त, अहंकार) अधिभूत, क्रिया (योगसाधना) अध्यात्म और कारक (अधिदैव) रूप मल को नष्ट करके परमगति मोक्ष को प्राप्त हो चुके हैं। इसी अनाहत नाद से 'अ' कार, 'उ' कार और 'म' कार तीन मात्रा युक्त ॐ कार प्रकट हुआ है। इसी के शक्ति से प्रकृति अव्यक्त से व्यक्त रूप में परिणत होती जा रही है। यह स्वयं प्रकाश है तथा जगत् का प्रकाशक भी है –

ततोऽमूल्लिवृदोङ्कारो योऽव्यक्त प्रभव स्वराट्।
यत्तल्लिङ्गं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः।।

(39।।12 स्कन्द भागवत)

अब आगे ऋषियों के अनभूत गंजन को जानिये। जिसे हम परमात्मा अथवा ब्रह्म कहते हैं उसके स्वरूप का भी बोध हमें ॐकार से ही होता है। योगी अनाहत चित्त में लय हुआ बाह्य श्रवणेन्द्रिय के उपद्रव से मुक्त हुआ इस एकमात्र सभी अर्थो को प्रकाशित करने वाले स्फोट तत्व का अन्वेषण करता हुआ सुषुप्ति एवं समाधि को भी अभाव रूप तथा परमात्मा के विशुद्ध स्वरूप को जानता है। यही ॐकार अपने मूल परमात्मा से साधक के हृदयाकाश में प्रकट होकर वेदरूपा (परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी) वाणी को अभिव्यक्त करता है। ''तस्य वाचकः प्रणवः'' पातंजलि योग सू.। अतः ॐकार अपने आश्रय परमात्मा परब्रह्म का साक्षात् वाचक है। यह सभी मंत्रों का सनातन बीज है।

उपरोक्त वर्णित ॐकार के तीन वर्ण 'अ', 'उ', 'म्' सत्व, रज तम इन तीन गुणों : ऋक, यजुः, साम इन वेदों: भूः, भुवः, स्वः इन तीन अर्थो और जाग्रत, स्वपन, सुषुप्ति को धारण किये हुए हैं। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीनों बुद्धि की अवस्थायें हैं अतः इसके कारण जो विश्व, तैजस एवं प्राज्ञरूपता है। इसमें नानत्व जो है वह माया मात्र है। संसार का अस्तित्व नहीं है तथापि जब तक देह, इन्द्रिय और प्राणों के साथ आत्मा की सम्बन्ध–भ्रान्ति है, तब तक हमें यह सत्य प्रतीत होता रहता है। स्वप्न में अनेकों विपत्तियाँ आती हैं पर वे यथार्थतः होती नहीं, फिर भी

स्वप्न टूटने तक उसका अस्तित्व बना रहता है। जब हम संसार के न होने पर भी उसमें विषयादिक विकारों का चिन्तन करके जो सुख, दुःख अनुभव करते हैं वह सब मृत्यु के साथ स्वप्नवत हो जाता है। ऋषियों का अनुनाद, वेदोक्त मंत्र हो या ऋचायें यह उनके आत्मस्थ चित्त में प्रगट हुए गुंजन का प्रतिफल है। जो सामान्य व्यक्ति को बहिर्मुखता से अन्तर जगत की ओर मोड़ देने में सक्षम है।

सूर्य का प्रकाश जैसे संसार को प्रकाशित करता है उसी प्रकार योगी, संत, पुरुष दूसरों को आत्मदेव के दर्शन हेतु अर्न्तदृष्टि देते हैं। सदगुरु देव अनुग्रह शक्ति परमेश्वर हैं। उनसे बढ़कर हमारा कोई हितैषी नहीं है। इस लेख में कुछ ऐसे संतों योगियों की वाणियों को पढ़ें जिनमें उनके अन्तर्जगत के अनुभूत सत्व का अनगूज सुनाई पड़ता है – श्री ब्रह्मानन्द जी (योगी संत)

जो जन ध्यान धरे निर्गुण को सो ईश्वर का दर्शन पावे।
जाय एकांत भवन में बैठे कोमल आसन भूमि बिछावे।।
चिन्ता फिकर छोड़ सब मन के त्रिकुटी महल में सुरति जमावे।।
पहले पहल रवि शशि तारे पल पल में बिजली चमकावे।
दूर दूर के दिव्य देवगण पुन पुन तेज बीच दरशावे।।
दिन दिन ध्यान धरे योगीजन ब्रह्मज्योति घट में प्रगटावे।
कोटि भानु सम झिलमिल झिलमिल रोम–रोम में सुख उपजावे।।
कर्मन के बन्धन सब टूटे माया मोह जाल कट जावे।
ब्रह्मानन्द मोक्ष पद पावे गर्भवास फिरके नहीं आवे।।

संत कबीर जी के ही तरह ब्रह्मानन्द जी भी ध्यान–योग के साथ समर्पण रूपी भक्ति योग के उपासक रहे हैं। इन्होंने भी अन्य सिद्ध संतों की भांति कलिमल हरण कर्ता सद्गुरु को ही माना है। कलि के प्रभाव से बल–विर्य की कमी, अल्प स्मृति के कारण हठयोग, प्राण–जयता की साधना आज सम्भव नहीं दिखलाई पड़ती।

अतः प्रभु नाम अहर्निश स्मरण, अनन्य भावा भक्ति होकर कीर्तन पूजन सतसंग को दृढ़ आधार बनाने से अन्तर जगत में प्रवेश शनैः शनैः सद्गुरु कृपा से होगा। श्री ब्रह्मानन्द जी के भजन गायन वादन के साथ पहले गाये जाते रहे हैं। अब संकीर्तनों में फिल्मी ध्वनि के भाव विहीन तर्जों पर हो रहे गायन चित्त को अधिक सतोमयता प्रदान नहीं करते जितने की मीराबाई, तुलसीदास, कबीर आदि के भजनावलियाँ। श्री गुरुदेव की अपरिहार्यता से सम्बन्धित एक भजन श्री ब्रह्मानन्द जी का अवलोकन अन्तर गूंज से युक्त होकर करें –

अगर है ज्ञान को पाना तो गुरु की जा शरण भाई।। टेक
जटा सिरपे रखाने से भस्म तन में रमाने से,
सदा फल मूल खाने से कमी नहीं मुक्ति को पाई।।

बने मूरत पुजारी है तीरथ यात्रा पियारी है।
करे ब्रत नेम भारी है, भरम मन का मिटे नाहीं
कोटि सूरज शशी तारा करें परकाश मिल सारा,
बिना गुरु घोर अंधियारा न प्रभु का रूप दरसाई।।

ईश समजान गुरुदेव लगा तन मन करो सेवा
ब्रह्मानन्द मोक्ष पद मेवालिये नव बंध कटजाई।।

एक पद से ऐसा दृष्टिगोचर होता है कि श्री ब्रह्मानन्द जी भी सिद्धयोग के साधना से सम्पूर्णता को प्राप्त बीसवीं सदी के सिद्ध–संत हुए हैं – देखें –

सोहं सोहं सोहं सदा बोल रे तोता।
नहीं तो भव सिंधु में तुम खायगा गोता।। टेक।।

जगत बगीचे बीच फल चुगता फिरे।
आतम स्वरूप की तरफ नजर नहीं धरे।
खायेगा यम गुलेल जभी फिरेगा रोता।। 1।।

लालच को देख मूढ़ पींजरे में फँस गया,
सदा ही खान पान मान हेत वश भया।
तु छोड़कर इसे कभी जुदा नहीं होता।। 2।।

एक दिन ये पिंजरा भी तेरा अटूट जायेगा,
स्वजन मकान माल सभी छूट जायेगा।।
जिसके वासते तु मुफत उमर फिरे खोता।। 3।।

कहता है ब्रह्मानन्द सुनो सुवा रे चपल।
इस पिंजरे को छोड़ सदा हो रहो अचल।
तु जाग मोह नींद से फिर कहां सोता।। 4।।

उपरोक्त भजन में तोते की चपलता मन की चंचलता से की गई है। विषयामुख मन तन रूपी पिजरें में बन्द प्राप्त भोगों में रमता रहता है। एक दिन ऐसा भी आता है कि यह काया भी जीर्ण शीर्ण होकर नष्ट हो जाता है। अतः हमें मंत्र जप द्वारा इस काया से अतीत उस आत्मा तत्व का दर्शन योग द्वारा करना ही अभीष्ट होना चाहिए। कुछ भजनों में नाथ पंथ के प्रभाव को भी देखा जाता है। जैसे – गोपी चन्द एवं उनके गुरुदेव महायोगी जलन्धर नाथ से युक्त भजन –

गोपीचन्द बाल तमारा, गुरुनाथ करो निस्तारा।। टेक।।
मुझे माता ज्ञान बताया, तज राज शरण में आया जी,
सब झूठा जगत पसारा।। गुरु नाथ करो निस्तारा ।। टेक।।

सुन्दर तन भूपति भारे, सब काल नाशकर डारे जी
मुझे लगे मौत डर भारा।। गुरुनाथ करो निस्तारा।
मैं सुना योग बल मारी। सब काल पाश भयहारी जी।
भव बंधन मेटन हारा। गुरुनाथ करो निस्तारा।
मुझे साधन योग बताओ। करुणाकर शिष्य बनाओ जी।
ब्रह्मानन्द चरण सिरधारा। गुरुनाथ करो निस्तारा।

विनम्र प्रार्थना सुनकर गुरु जालन्धर नाथ जी गोपीचन्द से बोले –

कहै नाथ जलन्धर ध्यानी। सुन गोपीचन्द सुनानी। टेक
जब मूलबन्ध दृढ़ लावे। तब उलट पवन चढ़ जावे जी
सब दशमें द्वार समानी।। सुन गोपी चन्द सुनानी
दिन–दिन जब योग बढ़ाया। तब शुष्क होय तन सारा जी
भूमि जल तत्व सुखानी। सुन गोपीचन्द सुनानी
फिर चन्द्रकला रस भीना। सब होय शरीर नवीना जी
अजरामर सिद्धि निवासी। सुन गोपीचन्द सुनानी
मरकर के फिर जो आवे। कोई प्रेम रसायन पीवे जी
ब्रह्मानन्द परम सुखखानी।। सुन गोपीचन्द सुनानी।।

प्रमाद से बचिए

– *श्री अवनीश*

प्रमादी मनुष्य समय का मूल्यांकन नहीं कर पाता। समय पर किसी काम को पूरा कर देना उसके बस की बात नहीं रहती। इस तरह वह अपने अहित के साथ दूसरों का अहित भी सदा करता रहता है। सफलता के अभिलाषियों को प्रमाद की दीवाल को तोड़कर जीवन क्षेत्र में साहस के साथ आगे बढ़ने की आदत डालनी चाहिए। इस आदत को अपनाने का एक सरल उपाय यह है कि जब आज का काम कल करेंगे यह विचार आके मन में आये तब इसके प्रतिकूल इस विचारको जमाइये कि आज का काम आज नहीं किन्तु अब ही इसी क्षण कही आरम्भ करके उसे पूरा करूंगा। इस प्रकार यदि करने लगेंगे तो निश्चय समझिए प्रमाद के पैर जो आपके चित्त पर जमे हैं उखड़ जायेंगे और यह पराजित होकर मैदान छोड़कर भाग जायगा। फिर आप न प्रमादी कहलायेंगे न आलसी और न कर्तव्यहीन।

यौगिक प्रश्नोत्तरी

साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर (श्री सद्गुरुदेव द्वारा) 'सायं 6 बजे हैं। योगिराज गुरुदेव प्रतिदिन की भांति अपने समाधि से उठकर गुफा के बाहर प्रांगड़ में आ चुके हैं तथा आराम कुर्सी पर विराजमान हो चुके हैं। इसी समय साधकों के संशयों का निवारण भी किया जाता है।

साधक – हे गुरुदेव! योग दर्शन में योगश्चित्त वृत्ति निरोधः कहकर योग की परिभाषा की है किन्तु मैं यह नहीं समझता हूँ कि चित्त क्या है और इसकी वृत्तियाँ क्या हैं और निरोध से क्या अभिप्राय है?

गुरुदेव – हे सौम्य ! सुनो। मन बुद्धि चित्त और अहंकार को अन्तःकरण चतुष्टय कहते हैं। अतः चित्त शब्द अन्तःकरण का बोधक है। चित्त को सत्व भी कहा गया है। सत्व का अर्थ अन्तःकरण भी होता है। गीता में चित्त के लिए 'मन' शब्द का प्रयोग किया गया है। सांख्य शास्त्र में जिसे अन्तःकरण कहा गया है उसे ही योग में 'चित्त' की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार मन, बुद्धि और अहंकार ये तीनों चित्त में ही परिगणित है। हमारा चित्त सत्व, रज और तम इन तीन गुणों से प्रभावित रहता है। अतः चित्त में इन्हीं गुणों के अनुसार वृत्ति प्रतिक्षण उठती रहती है। जिस प्रकार अगाध समुद्र में प्रतिक्षण तरंगे उठती रहती हैं। एक तरंग उठती है और बैठ जाती है। पुनः दूसरी तरंग उठती है और वह भी शान्त हो जाती है। तरंगें ही चित्त वृत्ति कहलाती हैं। ध्यान योग के द्वारा इन चित्त की वृत्तियों को अपने ध्येय में विलय कर देना ही योग कहलाता है। जब वृत्ति पूर्ण रूपेण विलय हो जाती है तब इसे निरोध की अवस्था कहते हैं।

साधक – गुरुदेव! आपने दीक्षा में मुझे मूलाधार कमल में इष्टदेव के रूप में गणपति का ध्यान बतलाया है मैं तो परब्रह्म का ध्यान करना चाहता था।

गुरुदेव – सौम्य! मैंने तुम्हें कुण्डलिनी योग की साधना का उपदेश किया है। इस साधना में मूलाधार कमल के अधिष्टातृदेव भगवान गणेश का ध्यान बताया गया है। भगवान गणपति अनादि तत्व हैं परब्रह्म हैं। वेदों में इन्हें साक्षात् परब्रह्म रूप बताया गया है। अतः इनके ध्यान में ही परब्रह्म का ध्यान हो जाता है इनके मनको लय करना सरल है। प्रारम्भ में यह स्थूल ध्यान होता है। किन्तु अभ्यास से धीरे–धीरे साधक सूक्ष्मता की ओर बढ़ जाता है। गीता के बारहवें अध्याय के प्रारम्भ में ही इसी प्रकार की बात बताई गई है। अर्जुन ने भगवान श्री कृष्ण से प्रश्न किया कि निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करने वाला योगी श्रेष्ठ है या आपके सगुण रूप का ध्यान करने वाला श्रेष्ठ है?

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान कहते हैं –

हे अर्जुन! निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करने वाला भी मुझे ही प्राप्त होता है तथा सगुण रूप का

ध्यान करने वाला भी मुझे ही प्राप्त करता है किन्तु दोनों की साधना पद्धति में अन्तर होने के कारण निर्गुण का उपासक मुझे कठिनाई से प्राप्त करता है –

अव्यक्तो हि गतिर्दुखम देहवद्भिरवाप्यते।

अव्यक्त की उपासना देहधारियों के लिये कठिन है जबकि सगुण का ध्यान करने वाला मुझे अल्पकाल में ही प्राप्त कर लेता है –

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्
भवामि नाचिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।

अर्थात् मेरे सगुण रूप की उपासना करने वाले को भी बहुत जल्दी ही इस मृत्यु रूपी भवसागर से पार कर देता हूँ। इसलिए अर्जुन तू अपने मन को ध्यान द्वारा मेरे मन में लगा और मेरी बुद्धि में अपनी बुद्धि को लगा इससे तू मुझे ही प्राप्त कर लेगा। इसमें कोई संशय की बात नहीं है। इस प्रकार से सगुण रूप का ध्यान करने वाला सर्वश्रेष्ठ योगी है। सौम्य! भगवान कृष्ण ने चौदहवें अध्याय के अन्तिम श्लोक में यह भी कहा है कि हे अर्जुन ब्रह्म की प्रतिष्ठा मुझ में ही है। अर्थात् मेरा ध्यान करने से ब्रह्म का ध्यान ही हो जायेगा। अतः साधक को मेरा ध्यान करना चाहिए।

ॐ नमः श्री राम लाल प्रभु जी परब्रह्मणे नमः

योगेश्वर प्रभु राम लाल जी धाम ट्रस्ट (रजि.)

प्रभु भक्तों को सहर्ष सूचित किया जाता है कि योगेश्वर प्रभु रामलाल जी , प्रभुओं के प्रभु, गुरुओं के गुरु, अनन्तकला अवतारी, इनके जन्म स्थान अमृतसर में एक दिव्य योग मन्दिर बनने जा रहा है। साथ ही प्रभु भक्तों के लिये विश्राम गृह बनाने हेतु सभी भक्तों का योगदान चाहिए। योग मन्दिर बनना कलयुग का सबसे बड़ा महायज्ञ है। इस यज्ञ में सहयोग देकर प्रभु कृपा प्राप्त करें।

इस पवित्र कार्य के लिए एक ट्रस्ट की स्थापना की गई है।

योगेश्वर प्रभु रामलाल जी धाम ट्रस्ट (रजि.)

बैंक खाता : पंजाब नेशनल बैंक

A/c No. 4705000100017449, IFSC Code - PUNBO470500

श्री प्रभु जी के घर का पता है–
रमण जोशी
764/4 भाइयों वाली गली
वेरी गेट अमृतसर (पंजाब)

विनीत
सभी ट्रस्टी

सूत्र का मूलमन्त्र

– प्रो. ऋषिराम शर्मा

गणितीय सूत्र का मूलमन्त्र एक वेदमन्त्र है कि –

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं च उत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासात् देवं पश्येत् निगूढवत्।।

(श्वेता. उप. 1/14)

अर्थात् जिस प्रकार काष्ठ में गुप्त अग्नि को प्रकट करने के लिए एक काष्ठ को अरणि तथा दूसरे काष्ठ को उत्तरारणि बनाकर मन्थन के द्वारा यज्ञाग्नि के रूप में प्रकट किया जाता है उसी प्रकार स्थूलशरीर तथा सूक्ष्मशरीर को अरणि तथा ओंकार मन्त्र को उत्तरारणि बनाकर योगाभ्यास रूपी मन्थन के द्वारा बुद्धि में गुप्त आत्मतेज को प्रकट किया जा सकता है यानि परमात्मदर्शन किया जा सकता है। पुरुष तथा प्रकृति का संयोग इसी लक्ष्य की सिद्धि के लिए हुआ है जैसा कि महर्षि पतंजलि का कथन है कि –

स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः।
तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्।।

(योगदर्शन 2/23–25)

अर्थात् परमात्मा की योगमाया के द्वारा पुरुष (दृष्टा) तथा प्रकृति (दृश्य) का संयोग उन दोनों की शक्तियों तथा स्वरूप को जानने के लिए किया गया है। योगमाया के भी दो स्वरूप हैं। एक स्वरूप अविद्यामाया है जोकि इस संयोग की हेतु (कारण) है और दूसरा स्वरूप विद्या है जो कि अविद्यामाया के अन्धकार को अपने ज्ञानप्रकाश से नष्ट कर देती है। इन दोनों विद्या तथा अविद्या पर जो शासन करता है वही परमात्मा है। तत्वज्ञान से अविद्या का अभाव हो जाने पर अध्यारोपित संयोग का अभाव हो जाता है और तभी आत्मा पर कल्पित जीवभाव के नष्ट होने पर आत्मा अपने सत्यस्वरूप परमात्मा के स्वरूप में प्रकाशित हो जाती है। इसे ही परमात्मदर्शन कहा गया है। वेदवाणी भी इस तथ्य की पुष्टि करती है कि –

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढ़े।
क्षरं तु अविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यः सोऽन्यः।।
सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम्।
आत्मविद्यातपोमूलं एतद् ब्रह्मोपनिषद् परम्।।
कल्पयति आत्मनात्मानं आत्मादेवः स्वमायया।
सः एव बुध्यते भेदान् इति वेदान्तविनिश्चयः।।

जीवं कल्पयति पूर्वं ततो भावान् प्रथग्विधान्।
बाह्यानाध्यात्मिकांश्चैव यथाविद्यः तथास्मृतिः।।
तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिः आपः स्रोतः स्वरणीषु चाग्निः।
एवमात्मात्मनि ग्रह्यते असौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति।।
एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः यस्मिन् प्राणः पंचधा संविवेशः।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां अस्मिन् विशुद्धे विभवति एष आत्मा।।

अर्थात् यह जो हिरण्यगर्भ संसार का कारणब्रह्म है उससे भी उत्कृष्ट यह जो सर्वव्यापी तथा अनन्तरूप अक्षर परब्रह्म है उसमें उस परम देव की देवात्मशक्ति के रूप में विद्या तथा अविद्या दोनों गुप्त हैं। अविद्याशक्ति से यह परिवर्तनशील तथा नश्वर संसार उसी प्रकार प्रकट हुआ है जैसे कि पृथ्वी से वनस्पतियाँ प्रकट होती हैं और विद्याशक्ति से सर्वज्ञ ईश्वर जो अमृतस्वरूप है और विद्या तथा अविद्या दोनों पर शासन करता है। यही ईश्वर सम्पूर्ण संसार में सर्वव्यापी आत्मा के रूप में प्रत्येक जड़ तथा चेतन शरीरों में उसी तरह गुप्त है जैसे कि दूध में घी गुप्त रहता है और अनेक उपायों से प्रकट किया जाता है। इसी प्रकार परमात्मा को प्रकट करने के लिए उन उपायों की आवश्यकता है जिससे परमात्मा के आवरण को हटाया जा सके। यह आवरण प्राकृतिक गुणों द्वारा निर्मित है। शास्त्र का कथन है कि इस आवरण का नाश आत्मविद्या तथा अविद्यानाशक तप के द्वारा ही सम्भव है। वेदान्तशास्त्र का यह निष्कर्ष है कि अपनी अविद्याशक्ति का आश्रय लेकर परमात्मा ने ही प्राणादि अनन्त मायिक भावों की कल्पना कर जीवसृष्टि की उत्पत्ति की है, उसमें चित्त के माध्यम से भ्रान्तिज्ञानमूलक बाह्यभाव तथा विद्यामूलक आध्यात्मिक भावों की रचना कर विद्या तथा अविद्या के अनुकूल स्मृतियों के संस्कार प्रकट करके अपनी ही माया से अपने को ही मायाधीन जीवसृष्टि के रूप में तथा मायाधीश होकर ईश्वर के रूप में अभिव्यक्त किया है। वही परमात्मा इस मायिक संसार में इसी प्रकार गूढ़ हो गया है जैसा कि तिलों में तैल, दही में घी, स्रोतों में जल तथा काष्ठ में अग्नि गुप्त रहती है। जिस प्रकार इन गुप्त पदार्थों को प्रकट करने के लिए साधनों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार परमात्मा को प्रकट करने के लिए शास्त्रों ने उपरोक्त अध्यायों में वर्णित तीन मार्गों (उपायों) का विधान दिया है। वेदशास्त्र का कथन है कि शरीरधारियों की बुद्धिरूपी गुफा में गुप्त परमात्मा ने अपने को उन शरीरों के अनुकूल इस प्रकार सर्वव्याप्त किया है कि उनकी मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ भ्रमित, अज्ञानमोहित तथा पहचानने में पूर्णतः असमर्थ हैं। परमात्मा ने स्वयं इसकी घोषणा कर दी है कि –

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुंजानम् वा गुणान्वितम्।
विमूढाः नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।।
यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्ति आत्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽपि अकृतात्मानो नैनं पश्यन्ति अचेतसः।।

अर्थात् अज्ञानमोहित जीवात्मायें शरीर में रहते हुए, विषयभोगों को भोगते हुए, मायिक गुणों के विकारों से बँधे हुए अथवा शरीर का त्याग करते हुए किसी भी अवस्था में सर्वव्यापी परमात्मा को नहीं देख सकते, क्योंकि यह प्राकृतिक ज्ञानशक्तियाँ सर्वथा असमर्थ हैं। परमात्मा के उस दिव्य स्वरूप को केवल ज्ञानचक्षु से ही अनुभव किया जा सकता है किन्तु ज्ञानचक्षु की प्राप्ति तो योगसिद्धि के उपरान्त ही सम्भव है। अत: प्रयासरत होकर योगसिद्धि पाने वाले योगी ही अपने विशुद्ध चित्त में इसकी अनुभूति कर सकते हैं किन्तु अन्त:करण की शुद्धि के बिना जो कृतकृत्य नहीं हुए हैं वह परमात्मा के दिव्य दर्शन के अधिकारी नहीं हैं। अत: इस सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्मतत्व की अनुभूति विशुद्ध चित्त के द्वारा ही सम्भव है, किन्तु चित्त में पंचधा प्राण ने प्रवेश करके उसे चित्तवृत्तियों के आवरण से दूषित किया है। इस अशुद्धि को भक्ति, योग तथा ज्ञान की जलधाराओं से शुद्ध करने के बाद योगसिद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञानचक्षु ही विशुद्ध चित्त में परमात्मदर्शन कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। महर्षि पतंजलि के अनुसार परमात्मा के तीन लक्षण हैं कि (1) परमात्मा सदैव अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश इन पाँच क्लेशों से मुक्त रहता है, परमात्मा पर कर्मबन्धन का प्रभाव नहीं होता, परमात्मा कर्मफल से मुक्त रहता है, परमात्मा कर्मसंस्कारों से भी मुक्त है। (2) परमात्मा में सर्वज्ञता असीमित है। (3) परमात्मा अनादि सिद्धयोगी है तथा प्रणव उसका वाचक शब्द है। अत: जो साधक साधना के द्वारा परमात्मा के इन तीन लक्षणों से युक्त हो जाता है, वही परमात्मदर्शन का अधिकारी हो जाता है। परमात्मा तथा जीवात्मा में जो भेद है वह अज्ञानकल्पित है, परमार्थतः अभिन्नता है। इसीलिए परमात्मा श्रीकृष्ण स्वयं स्वीकार करते हैं कि –

यदा भूतपृथग्भावं एकस्थमनुपश्यति।
तत: एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।।
अनादित्वात् निर्गुणत्वात् परमात्मा अयमव्यय:।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते।।
यथा प्रकाशयति एक: कृत्स्नं लोकमिमं रवि:।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवं अन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्।।

अर्थात् जब योगी सभी चित्तवृत्तियों का निरोध कर समाधिस्थ होता है तब वह एक ही परमात्मस्वरूप में अनन्त प्राणियों में विभक्त आत्मतत्व को देखता है कि जैसे सभी स्वरूपों का एक ही परमात्मतत्व से विस्तार हुआ है। इस अनुभूति के उपरान्त नानात्व का भ्रान्तिज्ञान स्वत: नष्ट हो जाता है और योगी का परमात्मस्वरूप में प्रवेश हो जाता है। तदनन्तर योगी यह अनुभव करता है कि परमात्मा ही अनादि, गुणातीत तथा अनन्त अविनाशी आत्मा है जोकि प्रत्येक शरीर में विद्यमान होते हुए भी उसी प्रकार अकर्ता तथा निर्लिप्त रहती है जिस प्रकार प्रत्येक

विद्युतयन्त्र में अनेकानेक कार्य करते हुए भी विद्युतशक्ति अकर्ता तथा निर्लिप्त रहती है। जिस प्रकार एक ही सूर्य सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करता है उसी प्रकार एक ही परमात्मा क्षेत्रज्ञों के रूप में सभी क्षेत्रों यानि शरीरों को प्रकाशित करता है। जब योगसिद्धि पाने के उपरान्त योगी को ज्ञानचक्षु की प्राप्ति हो जाती है तब योगी को प्रत्यक्ष विज्ञान होता है कि मायारचित क्षेत्र क्षेत्रज्ञों से भिन्न हैं और उनकी मायिक शरीरों से तदाकारता भ्रान्तिज्ञान है। इस विज्ञानानुभूति के बाद मिथ्या जीवभाव से मुक्ति मिल जाने पर योगी परब्रह्मस्वरूप में रमण करता है। वेदशास्त्र तथा अन्य स्मृतिशास्त्रों ने भी इस सत्य को स्वीकार किया है कि –

एतद् ज्ञेयं नित्यं आत्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किंचित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वंप्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्।।
ज्ञाज्ञौ द्वौ अजौ ईशानीशौ अजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्।।
अनादिसम्बधवत्या क्षेत्रज्ञोऽयं अविद्यया।
युक्तः पश्यति भेदेन ब्रह्मतत्वमात्मनि स्थितम्।।
आत्मा क्षेत्रज्ञसंज्ञो हि संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः।
तैरेव विगतः शुद्धः परमात्मा निगद्यते।।
सर्वाजीवे सर्वसंस्थे वृहन्तो अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
प्रथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टः तदा तेन अमृतत्वमेति।।
यदात्मतत्वेन तु ब्रह्मतत्वं दीपोपमेन इह युक्तः प्रपश्येत्।
अजं ध्रुवं सर्वतत्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।
ततः परं ब्रह्मपरं वृहन्तं यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्य एकं परिवेष्टितारं ईशं तं ज्ञात्वा अमृताः भवन्ति।।

अर्थात् संसार की समस्त योनियों तथा जड़ एवं चेतन शरीरों में जो सर्वत्र व्यापक आत्मतत्व विद्यमान है वही एकमात्र ज्ञेय वस्तु है यानि लक्ष्य है, क्योंकि उसके अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ न ज्ञातव्य है और न किसी भी पदार्थ का अस्तित्व है। ज्ञानेन्द्रियाँ तथा उनके विषय सभी भ्रान्तिजन्य हैं अतः स्वप्नपदार्थों की भान्ति मिथ्या हैं। सम्पूर्ण चर तथा अचर जगत मनोवृत्तिमात्र है, क्योंकि मनोवृत्तियों का निरोध हो जाने पर निरोध समाधि में ज्ञानचक्षु प्राप्त होने पर भोक्ता, भोग्य तथा परमात्मा तीनों एक ही सर्वाधार तथा सर्वव्यापी परम ब्रह्म के स्वरूप में लीन दिखाई देते हैं। अज्ञानमूलक भेद अज्ञान के नष्ट होने पर स्वतः नष्ट हो जाता है। प्रत्येक शरीर में जीवात्मा के रूप में जो चैतन्यात्मा है वह कल्पित जीवभाव के कारण अल्पज्ञ तथा असमर्थ है किन्तु अजन्मा परमात्मा का ही हृदयस्थ प्रतिबिम्ब होने से वह भी अजन्मा है। परमात्मा सर्वज्ञ तथा सर्वसमर्थ विश्व का नियन्ता है फिर भी अज्ञान के कारण शरीरस्थ

जीवात्मा से भेद प्रतीत होता है। इसी प्रकार संसार का प्रत्येक भोग्य पदार्थ तथा जीवात्मा में भोक्तापन गुणात्मक होने के कारण परिवर्तनशील तथा नश्वर है किन्तु गुणों की कारणभूता प्रकृति अजन्मा है, क्योंकि वह परमात्मा की ही स्वभाविकी ज्ञानबलक्रियारूपा है। अतःएव शरीरस्था आत्मा ही अनन्त, अकर्ता तथा विश्वरूप है। इन तीनों को यानि जीवात्मा, परमात्मा तथा प्रकृति को जो परब्रह्म का ही स्वरूप जानता है वह मायिक बन्धनों से मोक्ष पा जाता है। यह जो क्षेत्रज्ञ कही जाने वाली जीवात्मा है वह अविद्या के कारण अनादि काल से मायापाश में बद्ध है और अविद्या से उत्पन्न अस्मिता क्लेश यानि आत्मा का प्राकृतिक तत्वों के साथ तदाकारता के कारण जो अभेद सम्बन्ध है उसका ज्ञानचक्षु से भेद ज्ञात हो जाने से जीवभाव नष्ट हो जाता है और तब जीवात्मा तथा परमात्मा में अभिन्नता का सम्बन्ध दिखाई दे जाता है। आत्मा तभी तक जीवात्मा है जब तक वह अज्ञानवश प्राकृतिक गुणों से संयुक्त है और जैसे ही गुणातीत की स्थिति में वह गुणपरिणामों से स्वतन्त्र तथा मुक्त हो जाती है तैसे ही परमात्मस्वरूप में समाहित यानि एकात्मता का अनुभव करती है। यही योगसिद्धि कही जाती है। अतः जब तक साधक अपने को परमात्मा से पृथक अल्पज्ञ तथा असमर्थ जीवात्मा के रूप में देखता है तब तक वह इन समस्त प्राणियों के जीवननिर्वाहक तथा आश्रभूत महान ब्रह्मचक्र यानि ब्रह्माण्ड में भटकता रहता है यानि संसारमार्ग में गमन–हनन करता है। अनात्मभूत देहादि को आत्मा मानता हुआ देवता, मनुष्य एवं तिर्यगादि भेदों वाली अनेकानेक योनियों में भ्रमण करता है। जब देहात्मबुद्धि वाले अहंकारबीज से मुक्त होकर साधक निर्बीज समाधि में प्रवेश कर परमात्मा से एकीभाव का अनुभव कर लेता है तब अभेदरूप से परमात्मा का साक्षात्कार कर अमृतत्व प्राप्त कर लेता है। विष्णु पुराण में भी इस सत्य की पुष्टि की गयी है कि –

पश्यत्यात्मानमन्यच्च यावद्वै परमात्मनः।
तावत् सम्भ्राम्यते जन्तुः मोहितो निजकर्मणा।
संक्षीणाशेषकर्मा तु परं ब्रह्म प्रपश्यति।
अभेदेन आत्मनः शुद्धं शुद्धत्वात् अक्षयो भवेत्।।

अर्थात् जीव जब तक अपने को परमात्मा से भिन्न देखता है तब तक वह अपने कर्मों द्वारा मोहित होता हुआ माया द्वारा संसारचक्र में भटकाया जाता है। किन्तु जब योगसिद्धि के द्वारा प्राप्त ज्ञानचक्षु से उसके समस्त कर्म योगाग्नि से भस्म हो जाते हैं तब उसे शुद्ध परब्रह्म का अभेदरूप से साक्षात्कार होता है और शुद्धस्वरूप हो जाने से वह मायापाश से मुक्त होकर अमर हो जाता है। जब योगी प्रकाशमान दीपक के समान अपने प्रकाशयुक्त ज्योतिस्वरूप आत्मा का परमात्मा के स्वरूप में विलय करके साक्षात्कार करता है तब वह उस अजन्मा, निश्चल तथा निर्विकार परमात्मा को जानकर सभी मायिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है। परमात्मा प्रकृति का कारणरूप होने से उससे उत्कृष्ट है तथा सृष्टिरचयिता कार्यब्रह्म हिरण्यगर्भ से भी श्रेष्ठ है और महानतम है। परमात्मा ही विश्व का एकमात्र परिवेष्टा यानि विश्व को अपने सर्वव्यापक स्वरूप में

अन्तर्निहित कर उसका अधिष्ठान है। अतः उस परमात्मा को जानकर और परमात्मसाक्षात्कार कर साधक परमपद पा जाते हैं। सूत्र का लक्ष्य परमात्मदर्शन है और परमात्मा प्रत्येक प्राणी के हृदय में बुद्धिरूपी गुफा में गुप्त है। गुफा में प्रवेश के लिए परमात्मा की योगमाया की प्रतीक अचिन्त्या शक्तियुक्ता कुण्डली शक्ति मूलाधार चक्र में प्रवेशद्वार में विराजमान रहती है। अध्यात्म के तीनों मार्ग वहीं पहुँचते हैं और तदनन्तर कुण्डली शक्ति की आज्ञा से ही उस द्वार में प्रवेश मिलता है। वेदवाणी ने परमात्मदर्शन का यही उपाय बताया है कि –

एको देवः विश्वकर्मा महात्मा, सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।

हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तः, यः एतद् विदुः अमृताः ते भवन्ति।।

अर्थात् एक ही परमात्मा जो अपनी योगमाया से विश्व का रचयिता है वही प्रत्येक प्राणी के हृदय में सबकी सर्वान्तरात्मा है। उसके दर्शन के लिए अनन्या भक्ति, तत्वज्ञान तथा ध्यानयोग की साधना की आवश्यकता होती है। इन साधनों से जो मनुष्य उसको जान लेता है वह अमृतत्व प्राप्त कर लेता है। यह श्रुतिवचन है कि प्रत्येक शरीर में वही परमात्मा

''दृष्टेर्दृष्टा श्रुतेः श्रोता मतेर्मन्ता विज्ञातेर्विज्ञाता''

दृष्टि का दृष्टा है, कानों का श्रोता है, मन का मन्ता है तथा बुद्धि का विज्ञाता है, किन्तु –

''सः वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता''

''तमाहुः पुरुषमग्रहीयं महान्तम्''

''परा अस्य शक्तिः विविधैव श्रूयते''

''स्वभाविकी ज्ञानवलक्रिया च''

अर्थात् वह सर्वज्ञाता है किन्तु उसका ज्ञाता कोई भी नहीं है। वही महानतम् अग्रणीयम पुरुषोत्तम है, उसकी योगमाया अनन्तशक्तियुक्ता है और उसमें ज्ञानशक्ति, बलशक्ति तथा क्रियाशक्ति स्वभाविकी तथा असीमित है।

शोक संवेदना

बड़े दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि गुरुदेव के शिष्य पंचकूला निवासी श्री प्रेम चन्द शर्मा का 9 मार्च 2014 रविवार की शाम हृदयाघात के कारण देहावसान हो गया है। वे 62–63 वर्ष के थे और वर्तमान में सेवा–निवृत्त होकर आश्रम में निर्माण कार्य आदि सेवाओं में लगे रहते थे। वे मूल रूप से निराणा पानीपत के रहने वाले थे। उनकी धर्मपत्नी सरोज शर्मा व अन्य दुःखी बच्चों को आश्रम परिवार इस दुःख की वेला पर हार्दिक दुःख व संवेदना प्रकट करता है। श्री प्रभु जी दुःखी परिवार के बच्चों को दुःख सहने की क्षमता दें व दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

– संपादक 'सिद्धयोग'

स्वर्गीय श्री मेहर बाबा के विचार –

गूढ़ विद्या तथा आध्यात्मिक जीवन

प्रेषक – श्री एम. एम. अग्रवाल, आगरा

गूढ़ विद्या अन्य भौतिक शास्त्रों के समान ही एक शास्त्र है। यह जगत तथा मानवीय जीवन से सम्बन्ध रखती है। अन्य विद्याओं तथा गूढ़–विद्याओं में कोई अन्तर नहीं। अन्तर केवल इतना ही है कि अन्य विद्यायें संसार के उन विषयों का अध्ययन कराती हैं जिनका चिन्तन अवलोकन तथा प्रयोग करना सामान्य लोगों के लिए सम्भव होता है। तथा गूढ़ विद्या उन आन्तरिक भौतिक शक्तियों से सम्बन्ध रखती है जिनका चिन्तन अवलोकन तथा बौद्धिक विश्लेषण करना सामान्य लोगों के लिए सम्भवनीय नहीं होता। जिस अनुपात में आत्मा की सुप्त शक्तियाँ जागृत होती हैं, उसी अनुपात में गूढ़ विद्या का ज्ञान बढ़ता है।

आधुनिक साइकिकल रिसर्च सोसाइटियाँ अर्थात् अन्तःकरण की गुप्त शक्तियों का अनुसंधान करने वाली सभाएँ, अन्य विद्याओं की ही भाँति, गूढ़ विद्या को भी समझती हैं। सिद्धान्त की दृष्टि से गूढ़ विद्या, अन्य भौतिक विद्याओं की अपेक्षा, न तो कम उपयोगी है और न अधिक उपयोगी। ये सभाएँ सहयोग पूर्वक एवं संगठित रूप से गूढ़ विद्या का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं। आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म, सूक्ष्म एवं कारण शरीर का अस्तित्व अन्तार्जगत् की विभिन्नताएँ विकासवाद के नियम तथा कर्म और नियम, इत्यादि कुछ मुख्य गुप्त तथ्य समय पर रहस्योद्घाटन करके, सभी ने भी गूढ़ विद्या का थोड़ा सा शास्त्रीय सर्व–साधारण लोगों को प्रदान करना, आवश्यक समझा है। ऐसे रहस्योद्घा टन से आत्मिक आकांक्षा तथा साधना को भी प्रोत्साहन मिलता है; तथा औसत के मनुष्य को भी अनन्त सत्य की शोध का उत्साह प्राप्त होता है। किन्तु सद्गुरु ने गूढ़ विद्या का तत्वविषयक केवल साधन ज्ञान का ही उद्घाटन किया है। उन्होंने मानव जाति को गूढ़ तथ्यों का विस्तृत ज्ञान उचित नहीं समझा है। उन्होंने मानवता कल्याण को ही ध्यान में रखकर गूढ़ विषयों के प्रसार को अत्यन्त सीमित रखा है। उन्हें केवल सिद्धान्त सम्बन्धी संक्षिप्त ज्ञान सर्वसामान्य को विदित होने दिया है। विशेष गुप्त शक्तियों को उन्होंने रहस्य–गर्भित रहने दिया है; क्योंकि उनका उपयोगक्ष कलात्मक ज्ञान, सर्व सामान्य को प्राप्त होने पर, मानव जाति का अनिष्ट हो सकता है।

दूसरे शास्त्रों की अपेक्षा, गूढ़ विद्या जानने वाले तथा न जानने वाले में, महान अंतर है। अन्य विद्याओं का अप्रत्यक्ष ज्ञान, स्वतः उन विद्याओं के प्रत्यक्ष ज्ञान का स्थान ले के सकता है। किन्तु गूढ़ विद्या के सैद्धान्तिक अप्रत्यक्ष ज्ञान के और उसके प्रत्यक्ष ज्ञान के महत्व में महदन्तर है। गूढ़ तत्वों के सैद्धांतिक ज्ञान का न तो कुछ महत्व और न उसका कुछ उपयोग है। महत्व और उपयोग तो गूढ़ तत्वों के केवल प्रत्यक्ष ज्ञान है। यद्यपि गूढ़ विद्या एक महत्वपूर्ण शास्त्र है। तथापि

उसका कोरा सिद्धान्त सम्बन्धी कुछ भी महत्व नहीं रखता। जिन्हें उन तथ्यों का स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त नहीं हैं, उनका गूढ़ विद्या का सिद्धान्त संबन्धी ज्ञान, ऐसे देशों के वर्णन और समाचार के तुल्य है, जिन्हें उन्होंने अपनी आँखों से कभी नहीं देखा है। गूढ़ विद्या का सैद्धान्तिक ज्ञान वास्तविक गूढ़ तथ्यों की निरी कल्पना है।

शास्त्र की हैसियत से, गूढ़ विद्या अन्य विद्याओं की भाँति ही एक शास्त्र है। किन्तु कल्पना की हैसियत से वह निरुपम है। गूढ़ मूल्यों के सैद्धान्तिक ज्ञान के प्रसार से भी कभी–कभी अनिष्ट एवं अनर्थ की संभाव्यता रहती है, क्योंकि ऐसे ज्ञान के प्रसार से लोगों में व्यर्थ उत्सुकता बढ़ जाती है। गूढ़ शक्तियों को प्राप्त करना आध्यात्मिकता नहीं है। गूढ़ शक्तियों को प्राप्त करने तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने में महान् अन्तर है। जिस प्रकार अन्य भौतिक या वैज्ञानिक आविष्कारों का सदुपयोग या दुरुपयोग किया जा सकता है उसकी प्रकार गूढ़ या गुप्त शक्तियों का भी सदुपयोग या दुरुपयोग किया जा सकता है। गूढ़ शक्ति की सहायता से अन्तर्जगत् की उच्चतर भूमिकाओं में सहयोगपूर्वक आध्यात्मिक कार्य करने का विस्तृत क्षेत्र प्राप्त हो जाता है। किन्तु ऐसा सहयोगपूर्ण आध्यात्मिक कार्य तभी किया जा सकता है जब गूढ़ शक्तियों का उपयोग, औरों के आध्यात्मिक कल्याण करने के उद्देश्य से किया जाय। कुछ लोग अपने गम्भीर आध्यात्मिक उत्तरदायित्व को नहीं समझते, तथा अपनी गुप्त शक्ति का दुरुपयोग करके अपना तथा औरों का महान् अहित करते हैं।

नौसिखुआ साधक गूढ़ शक्तियों की साधना कर सकता है और निश्चित सीमा के भीतर कुछ शक्तियाँ प्राप्त भी कर सकता है। नवीन शक्तियों के प्राप्त होने पर, उसे नवीन आध्यात्मिक उत्तरदायित्व भी प्राप्त होता है। यदि वह इस नवीन आध्यात्मिक उत्तरदायित्व का पालन करने के योग्य नहीं है, तो उसकी नवीन गुप्त शक्ति, उसके लिए वरदान न होकर अभिशाप सिद्ध होगी। गूढ़ शक्ति का जरा भी दुरुपयोग करने से महान् घातक परिणाम होता है। और आत्मा का बन्धन और भी दृढ़ हो जाता है। गूढ़ शक्ति का दुरुपयोग करने से कभी आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग बिल्कुल अवरुद्ध हो जाता है और उन्नत आध्यात्मिक अवस्था से महान् अध: पतन हो जाता है। गूढ़ शक्तियों के प्राप्त होने से साधकों को औरों के ऊपर भयानक विशेषाधिकार प्राप्त हो जाता है और यदि वह अपनी शक्तियों का अविचार पूर्वक दुरुपयोग करे, तो वह अपना आध्यात्मिक सर्वनाश तो करता ही है, और साथ ही साथ औरों को भी कुछ कम नुकसान नहीं पहुँचाता।

आध्यात्मिक ज्ञान–सम्पन्न गुरु–जनों के हाथों में, गूढ़ शक्ति सुरक्षित रहती है तथा वे उसका उपयोग मानव जाति का हित करने के लिए करते हैं। किन्तु वे लोग भी उसका अत्यन्त परिमित एवं अल्प उपयोग करते हैं। गूढ़ विद्या के व्यवहारोपयोगी ज्ञान को विस्तृत उपयोगी करने में स्वाभाविक कठिनाइयाँ हैं। मानव जाति की लौकिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा उसका भौतिक स्वार्थ पूरा करने में, गुप्त शक्तियों का अधिक उपयोग नहीं किया जा सकता।

कर्म के नियम, संसार में, समान रूप से और निर्विघ्न तभी चल सकते हैं, जब लोग उसी नियम के द्वारा शासित सम्भावनाओं के साथ छोड़ दिये जायँ। कर्म के नियम में हस्तक्षेप करने से, सामान्य मानवीय व्यापार अनिश्चित, अर्थ हीन एवं अस्त–व्यस्त हो जायगा। यही कारण है कि कार्य सत्ता से शासित विश्व के क्षेत्र में या कर्म के नियम अधीन मानव जाति के प्रदेश में किसी अनिश्चित, अलौकिक तथा दुर्गेय तत्व का प्रचार नहीं किया जाता। यही वजह है कि गूढ़ शक्ति का उपयोग, केवल आध्यात्मिक उद्देश्य की सिद्धि तक, सीमित है।

सन्त–गण, कभी–कभी, अपने भक्तों की कुछ सांसारिक इच्छा भी पूरी करते हैं। किन्तु सांसारिक विषयों में, उनकी खुद की रुचि नहीं रहती। किन्तु दरअसल, वे अपने भक्तों को संसार से विरक्त करना चाहते हैं। उन्हें संसार विमुख करके आध्यात्मिकता की ओर खींचने के ही उद्देश्य से, वे उनके समक्ष सांसारिक प्रलोभन रखते हैं। छोटे–छोटे बच्चे, स्लेट पर लिखे हुए अक्षरों पर ध्यान नहीं जमाते। अक्षरों पर बच्चों का ध्यान खींचने के लिए, उनके माँ–बाप उन्हें लोभ देते हैं, और मिठाई से बने हुए अक्षर उनको देते हैं। अक्षरों के लोभ के कारण नहीं किन्तु मिठाई के लोभ के सबब, बच्चों का ध्यान मिठाई के अक्षरों पर तुरन्त जम जाता है। ज्योंही बच्चों का ध्यान अक्षरों पर जमने लगता है और वे अक्षरों में दिलचस्पी लेने लग जाते हैं, त्योंही मिठाई निकाल बाहर कर दी जाती है। सांसारिक मनुष्य, इसी प्रकार के नन्हें बच्चे हैं। अच्छी बातें सीखने में प्रोत्साहन देने के लिए, जिस प्रकार पिता अपने बच्चों को चॉकलेट देते हैं, उसी प्रकार सन्तगण अपने संसारासक्त भक्तों की कुछ हानि शून्य सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति करके उन इच्छाओं को छोड़ने तथा सच्ची आध्यात्मिकता को ग्रहण करने का उनका उत्साह बढ़ाते हैं।

संसारी मनुष्य, भौतिक भोग–विलास की तृष्णाओं में ऐसे डूबे रहते हैं कि इन तृष्णाओं की पूर्ति करने के अतिरिक्त उन्हें और कुछ भी नहीं सूझता। सम्भव है कि अपनी सांसारिक इच्छा पूर्ण करने का इरादा रख कर, वे सन्तों के पास जायँ एवं उनकी सेवा तथा सम्मान करें। जब कोई व्यक्ति, किसी सन्त के पास सम्मान–पूर्वक पहुँचता है तो सन्त का यह कर्तव्य हो जाता है कि सांसारिक इच्छा लेकर आए हुए मनुष्य को भी वह आध्यात्मिक सहायता करे। सन्त को मनुष्य के मन का पूरा–पूरा ज्ञान रहता है। अतः संभव है कि सन्त उस मनुष्य को आध्यात्मिकता की ओर आसानी से खींचने के इरादे से, उसकी सांसारिक इच्छा पूरी कर दें। किन्तु आध्यात्मिकता की ओर खींचने के उद्देश्य से भौतिक प्रलोभन देना, कोई नियम नहीं है। यह नियम का एक अपवाद है। ज्यादातर, भौतिक लाभ के लिए आने वाले लोगों को सन्त निरुत्साहित करते हैं। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से सन्तों को किसी स्वार्थपूर्ण गरज से प्रेम करने की अपेक्षा, उन्हें बिना किसी स्वार्थ के प्रेम करना लाख दर्जे बेहतर है। उन्हें सिर्फ इसलिए प्रेम करना चाहिए कि वे प्रेम करने योग्य हैं। सच्ची आध्यात्मिक सहायता प्राप्त करने के ही इरादे से, सन्तों के पास जाना चाहिए। कोई दूसरा इरादा लेकर उनके पास पहुँचना उचित नहीं है। सच्ची

आध्यात्मिक आकांक्षा लेकर सन्त के पास जाने तथा उनका सहवास करने से ही परम कल्याण की प्राप्ति होती है।

गूढ़ विद्या का कलात्मक औचित्य इस बात में है, कि उसके व्यावहारिक उपयोग से आध्यात्मिक उद्देश्य की सिद्धि होती है। आध्यात्मिक उद्देश्य के अतिरिक्त अन्य किसी हेतु से, गूढ़ शक्ति का उपयोग वस्तुतः उसका दुरुपयोग है। सांसारिक लाभ के लिए गूढ़ शक्ति का कदापि अवलम्ब नहीं करना चाहिए। उसके द्वारा मनुष्य अपनी सांसारिक तृष्णाओं की पूर्ति कर सकता है किन्तु ऐसा करने में उसकी वास्तविक उपादेयता नष्ट हो जाती है। हृदय को पवित्र करने के लिए, उसका उपयोग करने में ही उसकी वास्तविक उपादेयता है। मानव जाति की निम्नतर इच्छाओं को दूर करने तथा उसके हृदय को शुद्ध करने के लिए, गूढ़ शक्ति एक महान् एवं अत्यन्त प्रभावशाली साधन है। जो लोग इतनी उन्नति कर चुके हैं, कि उनकी अन्तःकरण की प्रसुप्त शक्तियाँ अब तब जागृत होने ही वाली हैं, या जिन लोगों की आन्तरिक शक्तियाँ काफी जागृत हो चुकी हैं, किन्तु उच्चतर भूमिकाओं में उनकी चेतना के खिंच जाने के कारण, उन्हें स्थूल संसार का पूर्ण ज्ञान नहीं है, खास कर ऐसे लोगों के लिए गुप्त शक्तियों का उपयोग करना, अत्यन्त आवश्यक एवं उपयुक्त हुआ करता है। ऐसे लोगों के साथ, उसी भाषा में बात करनी पड़ती है, जिस भाषा को वे समझ सकते हैं। बहुत से ऐसे होते हैं, जिन्हें अनेक गुप्त शक्तियाँ प्राप्त हो चुकी रहती हैं, किन्तु उन्हें भी आध्यात्मिक सहायता की उसी प्रकार जरूरत रहती है, जिस प्रकार सामान्य मनुष्य को। चूँकि उन्हें बहुत सी गूढ़ शक्तियाँ प्राप्त हो चुकी रहती है अतः गुरुजन उनसे दूर रह कर भी आसीन के साथ एवं प्रभावपूर्ण ढंग से उनको सहायता पहुँचा सकते हैं। उच्चतर भूमिकाओं पर गुरु-जनों की ज्ञानपूर्वक सहायता प्राप्त करना, केवल स्थूल माध्यम के द्वारा सहायता प्राप्त करने की अपेक्षा, अधिक फलदायक होता है।

आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ना तो कठिन हुआ ही करता है, साथ ही साथ अत्यधिक साधकों का यह भी लक्षण होता है कि उच्च भूमिका के आनन्द में, वे इतने मग्न रहते हैं कि सेवाकार्य के लिए, स्थूल क्षेत्र में उतरना वे जरा भी पसन्द नहीं करते। सिद्ध पुरुषों का सातवीं भूमिका में पहुँचकर ईश्वर ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात्, जो अवतरण होता है उसमें तथा उन्नत साधकों के नीचे उतरने में अन्तर है। सिद्ध पुरुषों का अवतरण एवं ईश्वरानुभूति के पश्चात् उनका किसी निम्नतर विशेष भूमिका में, कार्य के लिए स्थित होना प्रारब्ध परिणाम है। पारमार्थिक हेतु से प्रेरित मानव जाति का आध्यात्मिक कल्प के लिए ही, सिद्ध सद्‌गुरु प्रारब्ध कर करते हैं और अवतरित होते हैं इस प्रकार की आध्यात्मिक सत्ता से होते हैं, उसी के अनुसार वे किसी भूमिका में स्थित होते हैं। उदाहरण – मोहम्मद ईश्वरानुभूति के पश्चात् की भूमिका में, बुद्ध पांचवीं भूमिका में अजमेर के मोएनुद्दीन खिस्ती पांचवी में क्रमशः स्थित थे।

जब साधक दो भूमिकाओं के बीच जाते हैं तब आध्यात्मिक पथ पर आने के लिए, उन्हें थोड़ा पीछे हटना पड़ता है। दूसरी भाषा में यों कहा जा सकता है कि उच्चतर भूमिका में प्रवेश

करने के लिए निम्नतर भूमिका में उतरना पड़ता है। उदाहरणार्थ जब साधक तीसरी भूमिका और चौथी भूमिका के बीच में, फँस जाता है तो ऐसे साधक को, चौथी भूमिका पर चढ़ने लिए सद्–गुरु, उसे तीसरी भूमिका में चढ़ा देता है। उच्च भूमिका से साधकों का प्रकार दूसरों के लिये नीचे उतरना साधारण लोगों के लिए, लाभदायक है जो आध्यात्मिक पथ में प्रविष्ट नहीं हुए हैं तथा जो संशय के गहन वन में ही रहते हैं। सद्–गुरु, कभी–कभी किसी साधन के द्वारा, कोई आध्यात्मिक कार्य कराते रहते हैं, अतः जिज्ञासु को अपनी वैयक्तिक नति का प्रयत्न स्थगित करने के लिए कहते है। आध्यात्मिक पथ की अगली अवस्था को, शीघ्रता तथा सरलतापूर्वक पार करने के लिए उस प्रकार नीचे उतरना मानो एक तैयारी है। यह मानो दो कदम पीछे हटने के समान हैं। इस प्रकार नीचे उतरना, लाभदायक होने पर भी, साधक के लिए, दूसरों की सहायता करने के लिए अपनी उच्च अवस्था से नीचे उतरना, बड़ा कठिन प्रतीत होता है। पाँचवी भूमिका पर स्थित जिज्ञासु के लिए, नीचे उतरना खास–तौर पर कठिन होता है, क्योंकि पाँचवी भूमिका पर से, अनन्त सत्य दिखाई देने लगता है और उसकी ज्योति प्राप्त हो जाती है। सूफी वाद में यह स्थिति हरत कहलाती है। इस अवस्था में, अनन्त की ज्योति को छोड़कर, नीचे उतरने में साधक को महान् कठिनाई का अनुभव होता है। किन्तु कभी–कभी अनन्त के प्रकाश में डूबने का लोभ–त्याग कर, संसार के अन्य जीवों के उद्धार के लिए, साधक का नीचे उतरना जरूरी हो जाता है। सद्गुरु ऐसे उन्नत साधकों को नीचे लाने के लिए, अपने खास तरीके का उपयोग करता है। सच तो यह है कि गुरु–जन कल्याण के लिए, साधक को किसी भी अप्रिय अवस्था में नीचे उतार सकते हैं।

अजमेर के सुप्रसिद्ध वली के किस्से से मालूम होगा, कि सद्गुरु किस प्रकार अपने उच्च स्थित शिष्य को नीचे लाता है। अजमेर में इस वली की समाधि अभी तक है, जो एक विख्यात तीर्थ स्थान है। इस वली की आँखें चौंधिया गई थीं। वे निर्निमेष विस्फारित तथा स्फटिक तुल्य दिखाई देतीं थीं। उसकी आँखें हमेशा खुली रहतीं थीं। वह अपनी आँखें बन्द नहीं कर सकता था। उसे खाने–पीने की सुध नहीं थी, पांचवीं भूमिका में था। अजमेर का ख्वाजा इस वली का गुरु था। गुरु अपने शिष्य को नीचे उतारना चाहता था। वली के लिए अपने गुरु की आज्ञा मानना कठिन था। इस पर गुरु को चाबी ऐंठनी पड़ी। निम्नलिखित तरीके से गुरु ने शिष्य के होश दुरुस्त किए। उन्होंने पाँच चोरों को, इस वली के निवास–स्थान में आने के लिए प्रेरित किया। पाँचों चोर वली से पांच कदम दूर बैठ गए। और वे अपनी चोरी का माल बाँटने लगे। तुरन्त ही उनमें झगड़ा होने लगा। दो चोरों ने शेष तीन चोरों को जान से मार डाला। इन दोनों ने, लूट के माल को आपस में बाँट लिया, और भाग गए। भागते समय वे वली के निवास स्थान के पास ही निकले। ज्योंही वे वली के निवास–स्थान के अत्यन्त पास आए, त्योंही वली को साधारण चेतना प्राप्त हुई। इन दुष्टों का सान्निध्य, वली को होश में आने के लिए काफी था। चोरों के दुष्ट संस्कार से प्रभावित होकर, वली होश में आया, और उसे दुनिया का ज्ञान हुआ तब

उसे सर्वप्रथम कुछ गौरैये दिखाई दिए। अपनी जागृत शक्ति को अजमाने की उसकी प्रवृत्ति हुई। उसने कहा, 'ओ गौरैयो, मर जाओ।'' गौरैये नीचे गिरे और मर गए। फिर वह बोला, ''गौरैयो उठ जाओ।' गौरैये जी उठे। दोनों चोर, वली का यह चमत्कार देख कर, विस्मित हुए। उन्होंने वली से उन तीन चोरों को भी जिन्दा करने की प्रार्थना की, जिनको उन्होंने गुस्से में आकर मार डाला था। इस पर वली ने उन तीन मुर्दे चोरों को लक्ष्य करके कहा, 'जी उठो।' किन्तु वे जीवित नहीं हुए। वली के आश्चर्य की सीमा न रही। उसे ऐसा लगा कि उसकी शक्तियाँ नष्ट हो गई। अपनी शक्ति का निरर्थक उपयोग करने के कारण, उसे महान् पश्चाताप हुआ और वह रोता हुआ अपने गुरु के पास पहुंचा। जब वह गुरु के पास पहुंचा, तो उसने देखा कि वे तीनों चोर गुरु के पैरों की मालिश कर रहे हैं। यह देखकर, वली अपने निवास स्थान को वापिस लौट गया। खाने-पीने की उसने परवाह न की। वह बहुत दुबला हो गया। वह दस वर्षों तक उसी स्थान पर पड़ा रहा। उस पर सफेद चींटियां झूमने लगीं। और उसके शरीर को खाने लगीं। लोग वली के पास शक्कर लाया करते थे जिसे चींटियाँ खाती थीं। वली का शरीर शक्कर के ढेर से घिर गया था, अतः वह गंज-ए-शक्कर के नाम से विख्यात हुआ। इस कहानी से यह विदित होता है, कि उन्नत साधकों को भी, आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ने के लिए सद्गुरु की सहायता की आवश्यकता होती है।

गंज-ए-शक्कर की कथा से विदित होता है कि कैसे प्रसंगों पर गूढ़ शक्तियों और गूढ़ तरीकों का उपयोग किया जाता है। किन्तु यह जान लेना आवश्यक है कि किसी भी गूढ़ दृश्य और गूढ़ शक्ति का कोई वास्तविक निजी महत्व नहीं है। गूढ़ या अगूढ़ घटनाओं का महत्व या तो पूर्णतः भ्रामिक होता है या सापेक्ष। जब किसी वस्तु को मिथ्या महत्व दिया जाता है, तब वह भ्रामक मूल्य धारण कर लेता है, क्योंकि वह वस्तु, अज्ञान जन्य सीमित उद्देश्यों या चंचल तृष्णाओं को, उत्तेजित करती हैं या उनकी पूर्ति करती हुई सी दिखाई देती हैं। इन सीमित उद्देश्यों और चंचल तृष्णाओं को अलग करके यदि इन गुप्त चमत्कारपूर्ण दृश्यों या शक्तियों को देखा जाय तो उन पर आरोपित समस्त महत्व तथा अर्थ नष्ट हो जाता है। सत्य की अभिव्यक्ति या सत्य की अनुभूति की पूर्ति के लिए, कोई साधक स्वरूप वस्तु या अद्भुत घटना, जब महत्व प्राप्त कर लेती है तब सापेक्ष मूल्य का उदय होता है। अद्भुत चमत्कारों को महत्व तब प्राप्त होता है, जब वे दैवी लीला के ही आधारभूत होते हैं। दैवी लीला के साधन होने के नाते, सापेक्ष होने पर भी वे अर्थपूर्ण रहते हैं।

अज्ञानपूर्वक या सज्ञानपूर्वक, अनेक मनुष्य गूढ़ चमत्कारों को अनावश्यक महत्व देते हैं। गूढ़ चमत्कारों को ही वे आध्यात्मिकता समझने की भूल करते हैं। उनके लिए चमत्कार तथा भूत प्रेत के दृश्य ही अत्यन्त दिलचस्प विषय हैं। चमत्कारों और भूत प्रेतों में दिलचस्पी रखने वाले, आध्यात्मिक विषयों में दिलचस्पी रखने वाले लोग समझे जाते हैं। किन्तु, गूढ़ विद्या तथा रहस्यवाद एवं भूत शास्त्र तथा आध्यात्मिकता में महान अन्तर है। रहस्यवाद या आध्यात्मिकता

को साध्य समझना चाहिए तथा गूढ़ विद्या को एक भौतिक साधन। गूढ़ विद्या और आध्यात्मिकता का भेद नहीं समझने से, जटिलताऐं पैदा होती हैं।

सभी किस्म के चमत्कार, दृश्य भौतिक संसार से सम्बन्ध रखते हैं। और भौतिक संसार भ्रम या प्रपंच है। मिथ्या दृश्य होने के कारण वे परिवर्तन के अधीन हैं और कोई भी परिवर्तनशील वस्तु या घटना स्थायी महत्व नहीं रख सकती। अनन्त वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना ही परम सत्य का जानना है। गूढ़ जगत का ज्ञान या गूढ़ शक्तियों के संचालन का वह महत्व व मूल्य नहीं है,जो महत्व व मूल्य, ईश्वरानुभूति का है। स्थूल संसार के अन्य दृश्य जिस प्रकार मिथ्या और काल्पनिक हैं। उसी प्रकार गूढ़ शक्ति के चमत्कार भी मिथ्या और काल्पनिक हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से मुख्य बात, केवल दैवी जीवन स्वयं प्राप्त करना है तथा अन्य लोगों को, दैवी जीवन प्राप्त करने में सहायता करना है। दिव्य जीवन को प्राप्त करके प्रतिदिन के कार्यों में उसे व्यक्त करना ही सबसे महत्वपूर्ण बात है। सर्वश्रेष्ठ सत्ता एवं परम सत्य के सार और महात्म्य में प्रवेश करना और इस आन्तरिक महिमा की श्री और सुरभी को अन्य मनुष्यों के कल्याण एवं पथ प्रदर्शन के लिए, व्यक्त करना ही मानव जीवन का लक्ष्य है। नाम–रूप–मय संसार–में–सत्य, शिव, सौन्दर्य तथा पवित्रता को अभिव्यक्त करना ही यथार्थ जीवन है, और इसी का अक्षय महत्व है। अन्यान्य घटनाओं दृश्यों एवं सिद्धियों का स्वमेव कोई स्थायी महत्व नहीं।

तं दुदर्शं गूढ़मनु प्रविष्टं गुह्यहितं गव्हरेष्टं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।।

–कठोपनिषद् 1/2/12

आत्म योग द्वारा देहस्थ हृदय गुहा में निवास करने वाले देवता की जब अनुभूति होती है तब साधक हर्ष और शोक दोनों का परित्याग करने में समर्थ होता है, समस्त जगत उसी आत्मा का स्वरूप है उसके अतिरिक्त अन्य कोई सत्ता नहीं है। जब साधक को आत्म ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तब उसे लौकिक विषय की वस्तुयें प्राप्त होने में हर्ष नहीं होता और उनके न मिलने से शोक भी नहीं होता।

अमृत-कुम्भ

– अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

श्रद्धा कामधेनु है। यह माँ के समान मनुष्य की रक्षा करती है। ज्ञान–विज्ञान या धन–सम्पदा में ही शक्ति–सिद्धि का निवास नहीं है। श्रद्धा धीरे–धीरे हृदय में ऐसा रासायनिक परिवर्तन करती है कि हम परम पुरुषार्थ के अनुभव–योग्य हो जाते हैं। परम पुरुषार्थ स्वयं भगवान है। वह सब समय, सर्वत्र और सब रूपों में विद्यमान है। श्रद्धा के द्वारा उनकी विद्यमानता वर्तमानता में परिणत हो जाती है। उनका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। वही अमृत है। अमृतत्व सर्वत्र भरपूर है। कोई कण, कोई क्षण, कोई मन ऐसा नहीं है, जिसके अन्तराल में अमृत का शान्त समुद्र न रहता हो। अमृत प्रकट नहीं करना है। उसका अनुभव ही प्रकट करना है। अनुभव हृदय में होता है और श्रद्धा हृदय को अनुभव–योग्य बनाती है।

सत्वात्मक कारणवरि क्षीर–समुद्र के नाम से पुराण–प्रसिद्ध है। देव–दानव शक्तियों के द्वारा उसका संघटित मन्थन उसमें निहित पूर्व–पूर्व युगों के विषसंस्कार को पृथक् कर देता है। रत्न प्रकट होते हैं। परन्तु रत्न चाहे नित्य परोक्ष हों, चाहे नित्य–अपरोक्ष यदि अज्ञात हों तो वाक्य–प्रमाण के बिना उनका आवरण–भंग नहीं होता – साक्षात्कार नहीं होता। यही कारण है कि समुद्र–मन्थन के अनन्तर भी अमृत अज्ञात ही रहता है। उसको लोक साधारण के द्वारा आस्वाद्य बनाने के लिए शब्द–गरुड़ की अपेक्षा होती है। अमृत का साधारणीकरण गरुड़ के द्वारा सम्पन्न होता है। गरुड़ शब्दात्मक है। उनकी पक्ष–ध्वनि से साम–संगीत का विस्तार होता है। वे वेदात्मक हैं। उन्हीं पर आरूढ़ होकर भगवान अपने भक्तों को दर्शन देने के लिए आते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि भगवद्विषयक श्रवण–वर्णन ही भगवान की अभिव्यक्ति का वाहन है। भगवान गरुड़ पर आरूढ़ होकर ही भक्तों के सम्मुख प्रकट होते हैं। वही अमृत हैं और गरुड़ उन्हें लोक–भोग्य बनाते हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि शब्द–गरुड़ का आविर्भाव विनता– विनययुक्त वृत्ति के द्वारा हुआ है।

ठीक भगवान के आविर्भाव के समान ही अमृत का आविर्भाव भी लोक–व्यवहार गरुड़ के द्वारा ही हुआ है। ऐसा वर्णन आता है। देवताओं ने अमृत को अत्यन्त गुप्त करके सुरक्षित कर दिया था। वह जीवों के लिए दुर्लभ था। भगवान ने ऐसी लीला रची कि विनता और कद्रू में विवाद हो गया कि सूर्य के अश्व श्वेत हैं या कृष्ण हैं। परिणामतः यह निश्चय हुआ कि सत्य का पक्ष स्वामी होगा और मिथ्या–पक्ष दास। कद्रू के पुत्र कृष्ण सर्पों ने सूर्य के अश्वों को आवृत कर दिया। वस्तुतः आवरण सर्पवत् दुःखदायी है विनता दासी हो गयी। कद्रू ने उन्हें दास्यमुक्त करना स्वीकार तो किया पर अमृत की उपलब्धि होने पर। गरुड़ अमृत के लिए प्रयत्नशील हुए। देवताओं ने अमृत को इतना गुप्त रख छोड़ा था कि भगवान के वेदात्मक अथवा वाक्यात्मक

वाहन गरुड़ के लिए भी उसकी प्राप्ति कठिन थी। देवता इन्द्रिय हैं। इनके सम्मुख अमृत नहीं होता। पश्चात्–भाग में गुप्त रहता है। गरुड़ को इन इन्द्रिय देवताओं का विरोध करना पड़ा। वाक्य–प्रमाणकी जितनी गति है उतनी गति किसी भी इन्द्रिय देवता या वैज्ञानिक यन्त्र की नहीं है। गरुड़ विजयी हुए। अमृत–कुम्भ उन्हें प्राप्त हुआ। जो भगवान का कृपा–पात्र होता है – वाहन होता है उसे ही अमृतत्व की उपलब्धि होती है। उन्होंने देवताओं को इन्द्रियों को पराजित करके अमृत उपलब्ध किया और लोक व्यवहार में ले आये। जहाँ–जहाँ उन्होंने उस अमृत–कुम्भ की प्रतिष्ठा की, वहाँ–वहाँ कुछ अमृत के बिन्दु छलक पड़े। कुम्भ की स्थापना के स्थल ही अमृत उपलब्धि के द्वार बने।

क्षार–समुद्र से परिवेष्ठित भारत भूमि स्वभावतः मलिनता के कलंक पंक से मुक्त है। इसके दोष–कोष समुद्र में बह गये हैं। यह पुण्य–प्रक्षालित भूमि है। भौगोलिक दृष्टि से इसके चार पवित्र स्थानों में उस अमृत–कुम्भ की प्रतिष्ठा हुई थी। इन स्थानों में विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और ब्रह्म का प्रकाश है। ऋषिगण जो कि ज्ञान की मूर्ति हैं अपने वचन माध्यम के द्वारा यहीं अमृतत्व की अभिव्यक्ति किया करते थे। स्थान की दृष्टि से यह विश्व, तैजस, प्राज्ञ एवं तुरीय की भूमि है। यहाँ का ज्ञान विज्ञान अमृतत्व से भरपूर है। कालिक दृष्टि से ऐसे गृहयोग जो खगोल के लुप्त–सुप्त अमृतत्व को प्रबुद्ध कर देते हैं चारों स्थानों में बारह–बारह वर्ष पर अर्थात् द्वादश–वर्षात्मक कालयोग से प्रकट होते हैं। गंगा–त्रिवेणी, गोदावरी, क्षिप्रा नदियाँ अपनी जलधारा में अमृत–वस्तु को प्रवाहित करती हैं अर्थात् देश–काल एवं वस्तु तीनों अमृत के प्रादुर्भाव के योग्य हो जाते हैं। दान से धन की पवित्रता, स्नान से शरीर की पवित्रता, श्रद्धा से मन की पवित्रता और ऋषियों के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने से बुद्धि की पवित्रता प्राप्त होती है। मनुष्य के चित्त का निर्माण ही उसके जीवन का निर्माण है। यदि चित्त पवित्र हो जाय तो काम, क्रोध, लोभ, मोह की वासनाएँ क्रियान्वित होने योग्य न बनें और मनुष्य का जीवन निषिद्ध भोग, हिंसा, परिग्रह तथा पक्षपात से मुक्त हो जाय। जो लोग चित्त के निर्माण के बिना केवल बाह्य सेना, आरक्षी अथवा विधान के द्वारा चरित्र को पवित्र बनाना चाहते हैं उनका प्रयास इसलिए विफल होता है कि उनके पास चित्त की वासनाओं में शोधक संस्कार डालने की कोई युक्ति नहीं है। यह ठीक समय पर शास्त्रोक्त स्थान पर और पावन वस्तुओं के संयोग से जो स्नान, दान, श्रद्धा से एक अपूर्व की उत्पत्ति होती है अन्तःकरण में वह सदा के लिए प्रभावशाली ढंग से स्थिर हो जाती है और आवश्यक होने पर अपने स्वभाव को प्रकट करती रहती है। यह अमृत–कुम्भ मनुष्य के जीवन में अनेक प्रकार से अमृतत्व का संचार करता है। ज्ञान के द्वारा बुद्धि में, धर्म–श्रद्धा के द्वारा मन में, पवित्रता के द्वारा शरीर में, दान के द्वारा धन में और वासना के शोधन के द्वारा समस्त लोक–व्यवहार में एक उच्चकोटि का प्रकाश भर देता है जिससे मनुष्य का जीवन उज्ज्वल एवं कर्तव्य–पथ की ओर अग्रसर हो जाय। यह कुम्भ का मेला अन्तःशुद्धि की दृष्टि से आध्यात्मिक, देवता–प्रसाद की दृष्टि से अधिदैविक एवं लोक–चरित्र में पवित्रता

का संचार करने के कारण आधिभौतिक शुद्धि का हेतु है।

इस मेले में प्रमाण–शुद्धि की दृष्टि से प्रवचनों का श्रवण करना चाहिए। ज्ञान–पथ के पथिकों के लिए प्रवचन प्रमाण है। भक्ति–पथ के पथिकों को इस कुम्भ–मेला में नाम–संकीर्तन करना चाहिए। ज्ञान–मार्ग में वेदान्त–श्रवण की जो महिमा है भक्ति मार्ग में भगवन्नाम के श्रवण और संकीर्तन की भी वही महिमा है। धार्मिक पुरुषों को चाहिए कि वे इस कुम्भ–काल में अपने जीवन में कोई इन्द्रिय–संयमतात्मक नियम स्वीकार करें, व्रत करें, दान करें, स्वाध्याय करें। तीर्थ उसी व्यक्ति पर अपना प्रभाव प्रकट करते हैं जिसके हाथ पांव एवं मन संयत होते हैं। लोग जिसकी पवित्र कीर्ति का ज्ञान करते हैं वह लोगों के वाक्–प्रभाव से भी पवित्र हो जाता है। शब्द में अनन्त शक्ति निहित है। यह गरुड़ है, यह भगवान को लेकर आता है। भगवान ही अमृतत्व है। अमृतत्व मानो जीवनकी सर्वांगीण पूर्णता। यह प्रत्येक देश में प्रत्येक काम में प्रत्येक मनुष्य के लिए अपेक्षित होती है और मनुष्य की इस स्वाभाविक अपेक्षा की पूर्ति में इस उष्ण कुम्भ का महान् उपयोग है।

सिद्धयोगिराज

विश्वातीतं यथा विश्वमेकमेव विराजते।
संयोगेन सदा यस्तु सिद्धयोगी भवेतु सः।।
सर्वासां निजवृत्तीनां प्रसृतिर्भजते लयम्।
स भवेत्सिद्धसिद्धान्ते सिद्धयोगी महाबलः।।
उदासीनः सदा शान्त स्वस्थोऽन्तर्निजमासकः।
महानन्दमयो धीरः स भवेत् सिद्धयोगिराज।।
परिपूर्णः प्रसन्नात्मा सर्वासर्वपदोदितः।
विशुद्धो निर्भरानन्दः स भवेत् सिद्धयोगिराज।।

विश्वतीत (संसार में व्यापक परब्रह्म) परमेश्वर से जो निर्विकल्प समाधि में अभिन्न–तद्रूप हो जाता है, वह सिद्धयोगी है। जो अपने मन की समस्त वृत्तियों को आत्मा में लय कर लेता है वह सिद्धों के सिद्धान्त में परम शक्तिशाली महायोगी के रूप में सम्मानित होता है। जो विषयप्रपंच से रहित हो जाता है, इस तरह उदासीन होकर सदा शान्त रहता है, अपने स्वस्वरूप में स्थित रहकर उसका (चैतन्यरूप में) प्रकाशक होता है, सच्चिदानन्द में स्थित होकर कूटस्थ–असंग रहता है, वह सिद्ध योगिराज कहा जाता है। जो अखण्ड चेतन स्वरूप, द्वन्द्वातीत होकर रहता है, जो स्वाश्रित – समस्त प्रापंचिक उपाधियों से परे होकर अखण्ड स्वरूप में अधिष्ठित रहता है, निर्विकार और आनन्दस्वरूप होता है, वह सिद्धयोगिराज है।

योग और कर्म

– श्री सूर्यप्रसाद उपाध्याय

कर्म क्षेत्रं इदं जगत्, ऐसा प्राय: कहा जाता है, अर्थात् यह संसार कर्म क्षेत्र है। उनके क्षेत्र कर्म करने हेतु ही शरीर धारण किया में आता है। 'जगत्' की परिभाषा बतलाई है – गन्तु शीलं इति अर्थात् जगत् नाम चलने का द्योतक है। इसका स्पष्टीकरण महात्मा तुलसीदास जी ने श्री रामचरित मानस में किया है –

करि विश्व करि राखा।

जो जस करिहि सो तस फल चाखा।

इस शीलसंसार में मनुष्य आकर जैसा कर्म करता है वैसा फल भी उसे प्राप्त होता है। यही किया हुआ कर्म जन्मान्तर में उसका फल माना जाता है। जिसे दैवज्ञों ने कर्म, धर्म की संज्ञा दी है, यथा – जन्म के समय ही उनके पण्डित इत्यादि पंचांग देखकर भविष्यवाणी करता है कि यह बालक बड़ा ही भाग्यशाली, कर्मठ वर्तमान का आदि–आदि। यही उस शिशु का पूर्व जन्म में किया हुआ कर्म होता है, जो वर्त प्रारब्ध कहा जाता है। योगिराज ने भी अपने नीति–शतक में लिखा है –

पूर्व विधिना ललाट ट्ट लिखितँ तन्मार्जितु क: क्षम:।' अर्थात् पूर्व जन्म–कृत कर्मों का फल मनुष्य के भाग्य पटल में जो ब्रह्मा ने लिख दिया है उसे कौन मेट सकता है।

इतने पर ही सन्तोष कर मनुष्य को हताश नहीं होना चाहिए। यह प्रारब्ध भी मेटा जा सकता है। प्रश्न उठता है वह कैसे? उत्तर मिलता है 'योग' द्वारा। पुन: प्रश्न खड़ा होता है योग की प्राप्ति होगी कैसे? उत्तर मिलता है – सद्गुरु से। सद्गुरु की प्राप्ति कैसे होगी। जन्म–जन्मान्तर के किये गये शुभ कर्मो से। कारण यही है कि बिना अपने शुभ संस्कार रहे सद्गुरु की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। अब यहाँ यही कहना पड़ता है कि यदि अपने पूर्व जन्म–कृत शुभ फलों के कारण सद्गुरु की उपलब्धि हो गयी तो 'गुरोराज्ञा ह्यविचारणयि' बिना कुछ सोचे समझे गुरु मुख के निकले वाक्यों को जनार्दन का वाक्य मानकर उसका पालन करना चाहिए। यदि साधक गुरु द्वारा बतलाये मार्ग पर चलता रहेगा, तो उसे सफलता अवश्य मिलेगी।

यहाँ प्रस्तुत विषय यह है कि 'योग में कर्म का क्या स्थान है :– योग का एक सूत्र है – **'क्लेशमूल: कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्म वेदनीय:'**

अर्थात् जिन योगियों ने क्लेशों को निर्बीज समाधि द्वारा उखाड़ दिया है, उनके कर्म निष्काम अर्थात् वासना रहित केवल कर्तव्यमात्र रहते हैं इसलिए उनको इनका फल भोग्य नहीं है। जब चित्त में अनेक जन्मों के क्लेशों के संस्कार बने रहते हैं तब उनसे सकाम कर्म उत्पन्न

होते हैं।

कर्म भी चार प्रकार के होते हैं :–

(1) कृष्ण – पापरूप कर्म अर्थात् हिंसा आदि दूसरों को हानि पहुँचाने वाले, स्तेय, व्यभिचार आदि कर्म दुराचारी पुरुषों के होते हैं।

(2) शुक्ल – पुण्य कर्म अहिंसा आदि दूसरों को लाभ पहुंचाने वाले स्वाध्याय, तप, ध्यान धर्मात्माओं के होते हैं।

(3) कृष्ण–शुक्ल – (पाप–पुण्य मिश्रित कर्म) जिसमें किसी को लाभ किसी को हानि हो साधारण मनुष्यों के होते हैं।

(4) अशुक्ल अकृष्ण – न पुण्य न पाप अर्थात् फलों की वासना रहित – निष्काम शुद्ध कर्म।

इनमें से योगियों के कर्म अशुक्ल, अकृष्ण होते हैं, अर्थात् न पुण्य वाले न पाप वाले। पाप कर्म तो वे कभी करते ही नहीं। क्योंकि उनके लिए सर्वदा त्याज्य हैं, इस कारण उनके कर्म अकृष्ण हैं। शुक्ल कर्मों को निष्काम भाव से फलों को त्याग कर करते हैं इस कारण वे अशुक्ल होते हैं। साधारण मनुष्यों की तरह उनको कर्म में प्रवृत्त करने वाले अविद्या आदि क्लेश नहीं होते, बल्कि वे अपने आपको तथा अपने सब कर्मों और फलों को ईश्वर को अर्पण करके केवल उसकी आज्ञा–पालन से कर्तव्य समझते हुए करते हैं। इस कारण वासना रहित हैं।

ब्रह्मण्याध्याय कर्माणि सङ्गत्यक्त्वा करोति। लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भता। कायेन मनसा बुद्धया केवलै रिन्द्रियैरपि। योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्ग त्यक्त्वात्म शुद्धते युक्त:कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैति कीम्।

अयुक्तः काम कारेण फले सक्तो निबध्यते।।

(गीता 5। 10–11–12)

जो पुरुष सब कर्मो को परमात्मा में अर्पण कर आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जल में कमल के पत्ते के सदृश पाप में लिप्यमान नहीं होता। निष्काम कर्म योगी केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्याग कर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं। निष्काम कर्मयोगी कर्मो के फलों को परमेश्वर को अर्पण करके परमात्मा प्राप्ति रूप शान्ति को प्राप्त होता है और सकामी पुरुष फलों में आसक्त हुआ कामना के द्वारा बँधता है।

ऊपर बताये हुए योगियों के अतिरिक्त साधारण मनुष्यों के तीन प्रकार के कर्मो का फल बताते हैं। उन तीन प्रकार के कर्मो से उनके फल के अनुकूल ही वासनाओं की अभिव्यक्ति होती है। योगियों से अतिरिक्त सकामी पुरुष फलों की वासना के कर्म करते हैं। जैसे कर्म होते हैं उनके फलों के अनुकूल गुणों वाली वासनायें होती हैं। उन वासनाएँ से फिर वैसे ही कर्म और उनसे फिर उसी प्रकार की वासनायें बनती हैं। वासनाओं चित्त में दो प्रकार के संस्कार रूप से

होती है। एक स्मृति फलवाली, दूसरी जाति, आयु भोगफल वाली। जब कोई कर्म करता है तो उसके फल के अनुकूल ही सारी वासनाएँ प्रकट हो जाती हैं।

अब हम योगियों के निर्माण– चित्त के द्वारा होने वाले कर्मो पर विचार करते हैं। महर्षि पतंजलि ने कहा है – पंचविध निर्माण चित्त, जन्मौषधि मन्त्र तपः समाधिजाः सिद्धय इति। जनम, औषधि, मन्त्र, तप समाधि से उत्पन्न हो पाँच प्रकार के सिद्ध निर्माण चित्त हैं, उनमें जो ध्यान से उत्पन्न हुआ चित्त है वही वासना रहित है। उसमें ही रागादि प्रवृत्ति वासनाएँ नहीं होती। इस कारण क्लेश नष्ट होने से योगी का पुण्यपाप में सम्बन्ध नहीं होता। दूसरे चार (जन्म, औषधि, मन्त्र और तप से उत्पन्न होने वाले सिद्ध निर्माण चित्तों) की तो कर्म और वासनायें विद्यमान रहती हैं। ''ध्यानजं समाधिजं यच्चित तत्पंचसुमध्येऽनाशयं कर्म वासना रहित'' (भोजवृत्तिः) ध्यानजं अर्थात् समाधि से उत्पन्न हुआ जो चित्त है वह उन पांचों में अर्थात् कर्म की वासना और संस्कारों से रहित होता है यह अभिप्राय है।

पुनः तत्र ''ध्याजमनाशयम्''

जन्म औषधि–मन्त्र, तप और समाधि से उत्पन्न जो पांच प्रकार के सिद्ध निर्माण चित्त हैं, उनमें जो ध्यान (समाधि) से उत्पन्न हुआ चित्त है वही वासना रहित है। उसमें ही रागादि प्रवृत्ति और वासनाएँ नहीं होती। इस कारण क्लेश नष्ट होने से योगी का पुण्य पाप से सम्बन्ध नहीं होता। दूसरे चार (जन्म ओषधि, मन्त्र और तप से उत्पन्न होने वाले) सिद्ध निर्माण चित्तों की तो कर्म और वासनाएँ रहती हैं। (व्यासभाष्य)

जब योगी भी साधारण मनुष्यों की भांति कर्म करते देखे जाते हैं तो उनके चित्त वासना रहित किस प्रकार हो सकते हैं?

''कर्माशुक्ला कृष्ण योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्''

योगी का कर्म अशुक्लाकृष्ण (न शुक्ल, न कृष्ण अर्थात् निष्काम) होता है, दूसरों का तीन प्रकार का (पाप, पुण्य और पाप–पुण्य मिश्रित होता है।

अस्तु मनुष्य को उसके कर्मों के अनुसार फल अवश्य भोगना पड़ता है। वही पूर्व जन्म कृत 'कर्म' वर्तमान में 'भाग्य' या प्रारब्ध कहा जाता है। यद्यपि यह अपने कर्मो के फल का विपाक ही है तथापि योगी अपने साधक द्वारा उस प्रारब्ध को भेंट या बदल सकता है।

इस हेतु साधक को निष्ठापूर्वक, गुरु वचनानुसार अनवरत अपने साधन–मार्ग में रत रहना अपेक्षित है।

सदोपदेश

– श्री भोले बाबा

क्या क्या करूँ कैसे करूँ, यह जानना यदि इष्ट है।
तो शास्त्र संत बतायेंगे, जो इष्ट या कि अनिष्ट है।
श्रद्धासहित जा शरण उन की त्याग निज अभिमान दे।
निर्दम्भ हो निष्कपट हो, श्रुति संत को सम्मान दे।।
'मैं' और 'मेरा' त्याग दे, मत लेश भी अभिमान कर।
सब का नियंता मान कर विश्वेश का ही ध्यान धर।।
मत मान कर्ता आप को, कर्तार भगवत जान रे।
तो स्वर्ग द्वारा जाय खुल तेरे लिये सच मान रे।।
निशि दिन निरंतर बरसती सुख मेघ की शीतल झड़ी।
भीतर न तेरे जा सके है आड़ ममता की पड़ी।।
ममता अहंता त्याग दे, वर्षा सुधा की आयगी।
ईर्षा–जलन बुझ जायगी – चिन्ता–तपन मिट जायगी।
ममता अहंता वायु का झोंका न जब तक जायगा।
विज्ञानदीपक चित्त में तेरे नहीं जुड़ पायगा।।
श्रुति संत का उपदेश तब तक बुद्धि में नहिं आयगा।
नहिं शांति होगी लेश भी नहिं तत्व समझा जायगा।।
यदि शांति अविचल चाहता, यदि इष्ट निज कल्याण है।
संशय रहित सच जान तेरा शत्रु यह अभिमान है।।
मत देह में अभिमान कर, कुल आदि का तज मान दे।
'नहिं देह मैं' 'नहिं देह मेरा' नित्य इस पर ध्यान दे।।
हिंसा किसी की कर नहीं, जो बन सके उपकार कर।
विश्वेश को यदि चाहता है, विश्वभर को प्यार कर।।
जो मृत्यु भी आ जाय तो उस की न तू परवाह कर।
मत दूसरे को भय दिखा, रह आप भी सब से निडर।।
विश्वास से कर मित्रता, श्रद्धा सहेली ले बना।
प्रज्ञा तितिक्षा को बढ़ा, प्रिय न्याय का कर त्याग ना।।
गम्भीरता शुभ भावना, अरु धैर्य का सम्मान कर।
हैं आठ सच्चे मित्र ये, कल्याणकर भवभीर–हर।।

भाता है गुरु दर आना

– जगदीश राए बंसल 'अधम', नई दिल्ली

मुझे भाता है गुरु दर पे आना।
इस अवारा का नहीं कोई ठिकाना।।

नहीं जानता मुझे कोई इस जग में
नहीं दिल लगता मेरा किसी घर में
झूठा झगड़ा है – जग आशियाना।
मुझे भाता है ....(1)

हे दयालु, कृपालु मेरे गुरु देवा
मिल जाए मंजिल – पा जाऊँ सेवा
मुझ शरणागत को ना रुलाना।
मुझे भाता है ....(2)

मैं तड़फा विरह के घूट पी के
पाऊँ मति योग–वियोग सह के
है मस्ती भरा ये तराना।
मुझे भाता है ....(3)

अर्जी है मेरे दम निकलें इस दर पे
हो जाएं दर्शन और गुरु मन्त्र जवां पे
ऐ 'अधम' यही तेरा अफसाना।
मुझे भाता है ....(4)

पा लो रे पा लो

– विजय शर्मा, सहारनपुर

(तर्ज – झीनी रे झीनी)

पा लो रे पा लो
कृपा सद्गुरु देव की बरस रही है
पा लो रे पा लो

(1) जगत उद्धारक बन प्रभु आये
भार भूमि का हरने – 2
भोले नाथ शंकर महादानी
योग सुधा बरसाये जग में ... पा लो रे ...

(2) गंडा राम गृह प्रभु जी आये
लीला अपनी करने
जन्मपत्री जब उनकी बनायी
होने लगा शिव दर्श प्रभु में ... पा लो रे ...

(3) तीव्र वैराग्य मन में जागा
छोड़ दिया घर प्रभु ने
ब्रह्म ज्ञान की निधि लुटायी
भ्रमण करने लगे जगत में ... पा लो रे...

(4) अमृतसर ऋषिकेश सवाई में
योग शक्ति प्रभु की बरसी
विलक्षण लीला करके प्रभु ने
सिद्ध अनेक बनाये पल में... पा लो रे...

(5) श्री चन्द्रमोहन जी शरण में आये
दीक्षा प्रभु जी से पायी
गुरु भक्ति को देख के उनमें
ऐश्वर्य योग का दे दिया प्रभु ने ... पा लो रे ...

(6) युगल छवि की अभय शरण में
भक्त प्रभु जी के आये
कृपा प्रभु ने कीन्ही विजय पे
तिमिर हटा दिया सारा पल में... पा लो रे ...

हम खोटे सिक्कों को पुनः अपनाओ

– राजीव कुमार, अम्बिका नगर, जि0 ऊना, हि.प्र., मो. नं. 09816681786

आओ! सिद्धगुफा में दादा गुरुजी का जन्मोत्सव मनायें।
आजीवन योग की अलख जगायें! योगियों की जयकार लगायें।
12 साल की तपस्या से लौटे महाप्रभु का उद्घोष कर वायें।
श्री सिद्ध गुफा तपस्थली उनकी अविरल योग गंगा बहाये।।
विघ्न-बाधाओं के अन्तराय मिटाकर संत समागम लगवायें।
स्वयं प्रभुजी विराजमान हैं, उनका योग-संदेश गुंजाये।
अन्तर्यामी घट-घट वासी! अपना दुखड़ा हम सुनायें।
जन्मजन्मान्तरों के पाप धुलवाकर, योगजनित शांति पायें।।
हम खोटे सिक्के निरन्तर भटकते! पुनः अपनाओ।
जीवन-पथ से न भटके! ऐसी भावनायें जगायें।।
योग से सुबह, दिन, सायं रात्रि अपनी हर श्वांस महकायें।
जीवन मरण के आवागमन! शीघ्र छुटकारा दिलवायें।।
श्री चंद्रमोहन जी का दो घण्टे जाप एक घण्टा ध्यान सबको याद करवायें।
समय कटता, काल ग्रास डसता, इसी जन्म में अपना कल्याण करवायें।।
महाप्रभु जी ! काल-कोठरी चौरासी लाख योनियों से छुड़वाओ।
योग का अमिट अलौकिक ऐश्वर्य जगाकर शुभ आशीर्वाद बरसाओ!!

गंगा स्नान की महिमा, गंगा के समीप श्राद्ध, जप, दान तथा तर्पण का माहात्म्य और काशी की महिमा

(कल्याण से साभार)

(गतांक से आगे)

सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।
हरिद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे।। 39।।

महाफलप्रदा गङ्गा तस्मात्तत्र विशेषतः।
प्रयतः स्नानदानादीन्कुर्यान्मर्त्यो महामतिः।। 40।।

काश्यां यस्तु समागत्य गङ्गायां विधिवन्नरः।
स्नानमुत्तरवाहिन्यां कुरुते भक्तिभावतः।। 41।।

स साक्षाच्छिवतामेति देवपूज्यतमः स्मृतः।
पितृणां तर्पणं चापि तत्र निर्वाणदायकम्।। 42।।

सर्वतीर्थादिनिलया काशी विश्वेश्वरालया।
दुर्लभा पृथिवीयाह्या पृथिव्यन्तः स्थितापि च।। 43।।

सा स्थली जान्हवीतोयं जलं यत्र महामते।
तत्र मुक्तिः करस्था तु देहिनां पापिनामपि।। 44।।

अन्नपूर्णान्नदा यत्र माता देहभृतां स्वयम्।
गङ्गा च जलदा यत्र ज्ञानदा च सरस्वती।। 45।।

ब्राह्मादितो मुनिश्रेष्ठ यत्र मृत्युः परं पदम्।
पिता विश्वेश्वरो यत्र मोक्षमार्गोपदेशकः।। 46।।

तां काशीं यो न सेवेत विधिना वंचितस्तु सः।
मणिकर्ण्यां कृतस्नानः काश्यां विश्वेश्वरं प्रभुम्।
सम्पूज्य बिल्वपत्राद्यैः शिवसायुज्यमाप्नुयात्।।47।।

गङ्गामृत्तिकया कृत्वा तिलकं मुनिसत्तम।
यत्किंचित्कुरुते कर्म तत्सर्वं पूर्णतामियात्।।48।।

यत्रकुत्रापि गङ्गायाः सलिलैर्देवपूजनम्।
श्राद्धाभिषेककर्मादि कुरुते मानवोत्तमः।।49।।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि विधिहीनं भवेद्यदि।
अकालेऽप्यथ वा देशे श्राद्धादिपरिवर्जिते।।50।।

दाम्भिकं भावमास्थाय कृतं वा द्रव्यवर्जितम्।
अशुद्धद्रव्यसंघेन कृतं वा पापचेतसा।
सम्पूर्णफलदं सर्वं तथापि खलु तद्भवेत्।।51।।

गङ्गा सभी स्थानों पर तो सुलभ हैं, किन्तु हरिद्वार, प्रयाग और गङ्गासागरसङ्गम – इन तीन स्थानों पर दुर्लभ हैं। इन स्थानों पर गङ्गा महान् फल प्रदान करती हैं। अतः महान् बुद्धि वाले मनुष्य को चाहिए कि वहाँ पर विशेष प्रयत्न के साथ स्नान, दान आदि कृत्यों को करे ।।39–40।। जो मनुष्य काशी में आकर भक्तिभाव से सम्पन्न हो विधिपूर्वक उत्तरवाहिनी गङ्गा में स्नान करता है, वह साक्षात् शिवत्व को प्राप्त हो जाता है। वह व्यक्ति देवताओं का भी अत्यन्त पूजनीय कहा गया है और वहाँ पर किया गया पितृतर्पण भी निर्वाण प्रदान करता है।।41–42।। विश्वेश्वर सदाशिव की नगरी काशी अत्यन्त दुर्लभ है तथा सभी तीर्थों की आदि – निवासस्थली है। वह पृथ्वीमण्डल के अन्तर्गत रहते हुए भी भूमण्डल से पृथक् है (भगवान् विश्वनाथ के त्रिशूल पर स्थित है)। महामते! ऐसी दिव्य भूमि तथा भगवती गङ्गा का पावन जल जहाँ है, वहाँ पापी प्राणियों के लिए भी मुक्ति हाथ में ही है।।43–44।। जहाँ देहधारियों की माता अन्नपूर्णा स्वयं अन्न प्रदान करती हैं, जहाँ भगवती गङ्गा जल और भगवती सरस्वती ज्ञान प्रदान करती हैं। मुनिश्रेष्ठ! जहाँ मृत्यु ब्राह्म आदि से श्रेष्ठ परम पद (मोक्ष) – को प्रदान करती है और जहाँ पर जगत्पिता विश्वेवर मोक्षमार्ग के उपदेशक के रूप में विराजमान हैं, उस काशी का जो सेवन नहीं करता, वह विधाता के द्वारा ठग लिया गया है। काशी में मणिकर्णिका पर स्नान

करने वाला व्यक्ति बिल्वपत्र आदि से भगवान विश्वेश्वर का पूजन करके शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है।।45–47।। मुनिश्रेष्ठ! गङ्गा की मिट्टी से तिलक धारण करके मनुष्य जो कुछ कर्म करता है, वह सब पूर्ण हो जाता है।। 48।। जहाँ – कहीं भी श्रेष्ठ मनुष्य गङ्गा के जल से देवपूजन, श्राद्ध तथा अभिषेक आदि कर्म करता है – वह कर्म चाहे ज्ञान अथवा अज्ञान से हो, विधिहीन हो गया हो, श्राद्ध आदि के लिये अविहित देश अथवा काल में किया गया हो, दम्भभावना से युक्त होकर या द्रव्यरहित रूप में अथवा अन्यायोपार्जित द्रव्यों से या पापयुक्त मन से ही किया गया हो; फिर भी वह निश्चित रूप से सम्पूर्ण फल प्रदान करने वाला होता है। ।।49–51।।

पद

– भूपेन्द्र 'अंकुश' जलेसर

कलम ! अब लिख सद्गुरु के गीत।
जिनकी चरण-कमल-रज पाकर पापी हुये पुनीत।।
शक्तिपात से रामरती भी हुई काम विपरीत।
पाकर मुलख तुरीय अवस्था हो गये परम विनीत।।
छूकर चरण कबीरा पायौ अनहद का संगीत।
प्रेम दृष्टि पाकर मीरा ने गाये कृष्णा के गीत।।
पाकर वरदहस्त नृप भर्तृहरि हुये वासनातीत।
दिव्य चक्षु पाकर अर्जुन ने महाभारत लिया जीत।।
गुरु गौरख की कृपा मात्र से औघड़ नहिं भयभीत।
गुरु मंत्र से बाल्मीकि भी भूले सभी अनीत।।
जप का 'अंकुश' मन-मतंग की मिट्टी करे पलीत।
यही सोच गुरु शरण ग्रहण कर, विसरा सभी अतीत।।

निवेदन

– ले. भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश', सिविल लाइन्स, उन्नाव (उ.प्र.)

पड़ा मझधार में व्याकुल, मुझे उस पार आने दें।
प्रभो! भवसिन्धु में मेरी, न नौका डूब जाने दें।।

अकिंचन हूँ, न मेरे साथ –
में कोई सुकृत-साथी।
बना अभिमान ही केवल
हमारा एक सहपाथी।
बढ़े तूफान विषयों के, महा भयभीत है जीवन।
नहीं पतवार साधन की, प्रभो ! पद-पाल पाने दें।

भटकता ही रहा अब तक,
नहीं कल्याण-पथ पाया।
बड़ी विकराल है माया,
मुझे दिन-रात भरमाया।
नहीं है याद क्यों तुमको, अभी तक भूल बैठा था,
तुम्हारी याद जब आयी प्रभो! अब मत भुलाने दें।

तुम्हीं हो नाथ अब मेरे,
तुम्हारा ही सहारा है।
जिसे पुरुषार्थ का सम्बल,
अरे, वह जो विचारा है।
नहीं है चाह लोगों की, नहीं परवाह भोगों की,
यही मनुहार है तुमसे, प्रभो ! अपना कहाने दें।

पार्वती आसन

विधि – सीधे बैठकर अपने पैरों को मोड़कर घुटनों के पास लाकर इस प्रकार मिलाओ कि दोनों पैरों के पास तल, एड़ी, पादतल व पैरों के पंजे इस प्रकार मिल जायें कि देखने वालों को यह मालूम हो कि जैसे परस्पर चिपकाये हुए हैं, उसके बाद दोनों एड़ियों को सीवनी में ले जाओ व पैरों के तलवे व पंजे मिले हुए बाहर की ओर सामने दिखलायी देते रहें। ऐसा करने से घुटने स्वतः ही फैल जायेंगे, घुटनों पर अपने दोनों हाथ जमाकर रख दें, मेरुदण्ड को सीधा रखे। इसी का नाम पार्वती आसन है।

समय – साधारण रखें।

लाभ – अवरोधक है। वीर्य वाहिनी नाड़ी सिकुड़ती है, ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाले सभी स्त्री-पुरुषों के लिए पूर्ण लाभप्रद है।

योग वसिष्ठ से साभार –

चित्त के स्पन्दन से होने वाली जगत् की भ्रान्ति, चित्त और प्राण-स्पन्दन का स्वरूप तथा उसके निरोध रूप योग की सिद्धि के अनेक उपाय

श्रीवसिष्ठ जी कहते हैं – श्रीराम! जैसे रात्रि में जलती हुई लुकाठी को गोल घुमाने से अग्निमय चक्र असत् होते हुए भी सत्–सा दिखायी पड़ता है, वैसे ही चित्त के संकल्प से असत् जगत् सत्–सा दिखायी पड़ता है। जैसे जल के चारों ओर घूमने से जल से पृथक् गोल –नाभि के आकार का आवर्त (भँवर) दिखायी पड़ता है, वैसे ही चित्त के संकल्प–विकल्प से जगत् दिखायी पड़ता है। जैसे आकाश में नेत्रों के दोष से असत् मोर के पंख और मोती के समूह सत्य–से दिखायी पड़ते हैं, वैसे ही चित्त के संकल्प से असत् जगत् सत्य–सा दिखायी पड़ता है। रघुनन्दन! जैसे शुक्लत्व और हिम, जैसे तिल और तेल, जैसे पुष्प और सुगन्ध तथा जैसे अग्नि और उष्णता एक–दूसरेसे मिले हुए और अभिन्नरूप हैं, वैसे ही चित्त और संकल्प एक–दूसरे से मिले हुए और अभिन्नरूप हैं। उनके भेद की केवल मिथ्या कल्पना की गयी है। चित्त के विनाश के लिए दो उपाय शास्त्रों में दिखलाये गये हैं–एक योग और दूसरा ज्ञान। चित्तवृत्ति का निरोध योग है और परमात्मा का यथार्थ अपरोक्ष साक्षात्कार ही ज्ञान है।

श्रीराम जी ने पूछा – ब्रह्मन् ! प्राण और अपान के निरोधरूप योग नाम की किस युक्ति से और कब मन अनन्त सुख को देने वाली परम शान्ति को प्राप्त करता है?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा – श्रीराम ! जैसे जल पृथ्वी में चारों ओर से प्रवेश करके व्याप्त होता है, वैसे ही इस देह में विद्यमान असंख्य नाड़ियों में चारों ओर से जो वायु प्रवेश करके व्याप्त होता है, वह प्राणवायु है। स्पन्दन के कारण भीतर क्रिया के वैचित्र्य को प्राप्त हुए उसी प्राणवायु के अपान आदि नामों की योगी–विवेकी पुरुषों ने कल्पना की है। जैसे सुगन्ध का पुष्प तथा शुक्लता का हिम आधार है, वैसे ही चित्त का यह प्राण आधार है। प्राण के स्पन्दन से चित्त का स्पन्दन होता है और चित्त के स्पन्दन से ही पदार्थों की अनुभूतियाँ होती हैं, जिस प्रकार जल के स्पन्दन से चक्र की तरह गोल आकार की रचना करने वाली लहरें उत्पन्न होती हैं। चित्त का स्पन्दन प्राण–स्पन्दन के अधीन है। अतः प्राण का निरोध करने पर मन अवश्य उपशान्त (निरुद्ध) हो जाता है – यह बात वेद–शास्त्रों को जानने वाले विद्वान् कहते हैं। मन के संकल्प का अभाव हो जाने पर यह संसार विलीन हो जाता है।

श्रीराम जी ने पूछा – महाराज! देहरूपी घर में स्थित हृदयादि स्थानों में विद्यमान नाड़ीरूपी छिद्रों में निरन्तर संचरण करने वाले तथा मुख,नासिका आदि छिद्रों में निरन्तर गमनागमनशील प्राण आदि वायुओं का स्पन्दन कैसे रोका जा सकता है?

श्रीवसिष्ठ जी ने कहा – श्रीराम! शास्त्रों के अध्ययन, सत्पुरुषों के सङ्ग, वैराग्य और अभ्यास से सांसारिक दृश्य पदार्थों में सत्ता का अभाव समझ लेने पर चिरकालपर्यन्त एकतानतापूर्वक अपने इष्टदेव के ध्यान से और एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा के स्वरूप में स्थिति के लिये तीव्र अभ्यास से प्राणों का स्पन्दन निरुद्ध हो जाता है। सुखपूर्वक रेचक, पूरक और कुम्भक आदि प्राणायामों के दृढ़ अभ्यास से तथा एकान्त ध्यानयोग से प्राणवायु निरुद्ध हो जाता है। ॐकार का उच्चारण और ॐकार के अर्थ का चिन्तन करने से बाह्य विषयों के ज्ञान का अभाव हो जाने पर प्राणवायु का स्पन्दन रुक जाता है। रेचक प्राणायाम का दृढ़ अभ्यास करने से विशाल प्राणवायु के बाह्य आकाश में स्थित हो जाने पर नासिका के छिद्रों को जब प्राणवायु स्पर्श नहीं करता, तब प्राणवायु का स्पन्दन रुक जाता है। इसी का नाम बाह्यकुम्भक प्राणायाम है। पूरक का दृढ़ अभ्यास करते–करते पर्वत पर मेघों की तरह हृदय में प्राणों के स्थित हो जाने पर जब प्राणों का संचार शान्त हो जाता है, तब प्राण–स्पन्दन रुक जाता है। इसी का नाम आभ्यन्तरकुम्भक प्राणायाम है। कुम्भ की तरह कुम्भक प्राणायाम के अनन्तकाल तक स्थिर होने पर और अभ्यास से प्राण का निश्चल स्तम्भन हो जाने पर प्राण वायु के स्पन्दन का निरोध हो जाता है। इसी का नाम स्तम्भवृत्ति प्राणायाम है। जिव्हा के द्वारा तालु के मध्य भाग में रहने वाली घण्टिका को प्रयत्नपूर्वक स्पर्श करने से जब प्राण ऊर्ध्वरन्ध्र में (ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् कपाल–कुहर में, जो सुषुम्णा के ऊपरी भाग का द्वार कहा जाता है) प्रविष्ट हो जाता है, तब प्राणवायु का स्पन्दन निरुद्ध हो जाता है। समस्त संकल्प–विकल्पों से रहित होने पर कोई भी नाम–रूप नहीं रहता तब अत्यन्त सूक्ष्म चिन्मय आकाशरूप परमात्मा के ध्यान से बाह्याभ्यन्तर सारे विषयों के विलीन हो जाने पर प्राणवायु का स्पन्दन निरुद्ध हो जाता है। नासिका के अग्रभाग से लेकर बारह अङ्गुलपर्यन्त निर्मल आकाशभाग में नेत्रों की लक्ष्यभूत संवित्दृष्टि (वृत्तिज्ञान) – के शान्त हो जाने पर अर्थात् नेत्र और मन की वृत्ति को रोकने से प्राण का स्पन्दन निरुद्ध हो जाता है।

अभ्यास से यानी योगशास्त्रों में प्रदर्शित पवन–निरोध के अभ्यास से ऊर्ध्वरन्ध्र के द्वारा (सुषुम्णामार्ग से) तालु के ऊपर जो ब्रह्मरन्ध्र है, उसमें स्थित प्राणवायु जब विलीन हो जाता है, तब प्राणवायु का स्पन्दन रुक जाता है। भृकुटी के मध्य में चक्षु–इन्द्रिय की वृत्ति के शान्त होने से आज्ञाचक्र में प्राणों के विलीन हो जाने पर जब चिन्मय परमात्मा का अनुभव हो जाता है, तब प्राणों का स्पन्दन रुक जाता है। ईश्वर के अनुग्रह से तुरंत उत्पन्न हुए दृढ़ीभूत तथा समस्त विकल्पांशों से रहित परमात्मज्ञान के हो जाने पर प्राणों का स्पन्दन निरुद्ध हो जाता है। मननशील श्रीराम जी ! हृदय में स्थित एकमात्र चिन्मय आकाशस्वरूप परमात्मा के ज्ञान से, विषय–वासना के अभाव से और मन के द्वारा परमात्मा का निरन्तर ध्यान करने से प्राणों का स्पन्दन निरुद्ध हो जाता है।

श्रीरामचन्दजी ने पूछा – ब्रह्मन् ! इस जगत् में प्राणियों के उस हृदय का स्वरूप क्या है, जिसमें यह सब दर्पण में प्रतिबिम्ब की तरह स्फुरित होता है?

श्रीवसिष्ठजी ने कहा – श्रीराम! इस जगत् में प्राणियों के दो प्रकारके हृदय हैं – एक उपादेय और दूसरा हेय। अब तुम इनका विभाग सुनो। इयत्तारूप से परिच्छिन्न इस देह में वक्षःस्थल के भीतर शरीर के एक देश में स्थित जो हृदय है, उसे तुम हेय हृदय जानो। चेतनमात्रस्वरूप से स्थित हृदय (परमात्मा) – को उपादेय कहा गया है। वह परमात्मा सबके भीतर और बाहर है तथा भीतर एवं बाहर नहीं भी है। अर्थात् संसार के प्रतीतिकाल में तो परमात्मा उसके भीतर और बाहर – सब जगह परिपूर्ण है और वास्तव में वह संसार के भीतर–बाहर नहीं है; क्योंकि संसार का अत्यन्त अभाव है। अतः परमात्मा ही अपने आप में नित्य स्थित है। वह उपादेय परमात्मा ही प्रधान हृदय है। उसी में यह समस्त जगत् विद्यमान है वही समस्त पदार्थों का दर्पण है अर्थात् उसी में यह संसार दर्पण में प्रतिबिम्ब की ज्यों संकल्परूप से स्थित है और वही सम्पूर्ण सम्पत्तियों का कोष है। श्रीराम! चेतन परमात्मा ही सभी प्राणियों का हृदय कहा जाता है। जड़ और जीर्ण पत्थर के सदृश देह के अवयव का मांस–खण्डरूप एक अंश वास्तविक हृदय नहीं है। इसलिए चेतनस्वरूप विशुद्ध हृदय – परमात्मा में वासनाओं से रहित होकर बलपूर्वक चित्त को लगाने से प्राण का स्पन्दन निरुद्ध हो जाता है। इन पूर्वोक्त उपायों से तथा अन्यान्य अनेक तत्वज्ञ आचार्यो के मुख से उपदिष्ट नाना संकल्पों से कल्पित उपायों से प्राणस्पन्द निरुद्ध हो जाता है। ये पूर्वोक्त योगविषयक युक्तियाँ अभ्यास के द्वारा ही श्रेष्ठ साधक के लिए संसार का उच्छेदन करने में बाधारहित उपाय हैं। भ्रू, नासिका, तालुसंस्थान तथा कण्ठाग्र–प्रदेश से लेकर बारह अङ्गुलपरिमित प्रदेश में अभ्यास से प्राण लीन हो जाता है अर्थात् प्राणों का निरोध हो जाता है। अभ्यास से ही पुरुष आत्माराम, वीतशोक तथा परमात्मा की प्राप्तिरूप भीतरी सुख से पूर्ण होता है। उस परमपदरूप परमात्मा में यह समस्त जगत् विद्यमान है; उससे यह सब उत्पन्न हुआ है, वह समस्त जगत् का स्वरूपभूत है और वह इस जगत् के चारों ओर विद्यमान है। किन्तु वास्तव में उसमें न तो यह दृश्यमानसमस्त जगत् विद्यमान है, न यह उससे उत्पन्न हुआ है और न जगत् उसका स्वरूप ही है। वास्तव में इस प्रकार का जगत् है ही नहीं, प्रत्युत वह परमात्मा स्वयं ही अपने–आप में स्थित है। श्रीराम! जो महाबुद्धिमान् ज्ञानी महात्मा पुरुष सारी सीमाओं के अन्तरूप उस परम पद का अवलम्बन करके स्थित रहता है, वह स्थितप्रज्ञ, तत्ववेत्ता, जीवन्मुक्त कहलाता है। जिस महात्मा की समस्त कामोपभोग की इच्छाएँ निवृत्त हो गयी हैं, जिसका सम्पूर्ण पदार्थों में अनुकूलता और प्रतिकूलता रूप संकल्प निवृत्त हो गया है तथा जिसका अन्तःकरण समस्त व्यवहारों में हर्ष और विषाद से रहित तथा सम हो गया है एवं जिसका मन शान्त हो चुका है, वह महात्मा सब पुरुषों में श्रेष्ठ है।

योग-साधन में तप का महत्व

– श्री सुरेन्द्र बहादुर एम.ए.

वाणी का तप

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायम्यसनं चैव वांग्मयं तप उच्यते।।

– गीता 17–15

अर्थात् – उद्वेग न उत्पन्न करने वाला, प्रिय एवं कल्याणकारक भाषण तथा स्वाध्याय एवं जप वाणी का तप कहलाता है।

वाणी का सबसे बड़ा तप है सत्य भाषण। वाणी पर संयम रखते हुए केवल सत्य, प्रिय और आवश्यक भाषण करना चाहिए। जहाँ तक हो सके मौन रहना चाहिए। मौन की महिमा भगवान श्रीकृष्ण ने इस प्रकार कहा है :–

मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्।

जहां तक हो सके मौन रहने का अभ्यास करना चाहिए। मौन रहने वाले के मन की ताकत बढ़ती है। जहां तक हो सके कम बोले और जो बोले वह सत्य बोले, किन्तु वह सत्य अप्रिय न हो। भगवान मनु ने कहा है :–

सत्यं ब्रूयात् प्रियम् ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।

अर्थात् – सत्य बोले, प्रिय बोले, किन्तु अप्रिय सत्य न बोले। अप्रिय एवं अहितकर वचन हिंसामूलक होते हैं, अतः ऐसे वचनों से वाचिक पाप उत्पन्न होता है।

वेदों और शास्त्रों का श्रद्धापूर्वक अध्ययन करना भी वाणी का तप कहलाता है। इस तप के द्वारा वाचिक शुद्धि होती है और वाणी सम्बन्धी पापों का क्षय होता है। अपने इष्ट मन्त्र का अहर्निश जप करने से पापों का क्षय होकर अन्तःकरण शुद्ध होता है और इष्ट देवता का साक्षात्कार होता है। भगवान पतंजलि ने योग–सूत्र में लिखा है :–

स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः।

अर्थात् – स्वाध्याय से इष्ट देवता का साक्षात्कार होता है।

मानसिक तप

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येत तपो मानसमुच्यते।।

– गीता 17–16

अर्थात्– मन की प्रसन्नता, सौम्यत्व, मौन, आत्मचिन्तन, मन का निग्रह और भावों की

पवित्रता – यह मन सम्बन्धी तप कहा जाता है।

मन को सदा प्रसन्न बनाये रखना चाहिए। प्रसन्न मन में ही शुभ भावनायें उत्पन्न होती है। राग, द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध, घृणा, काम आदि से सने हुये गन्दे विचारों को मन से निकाल कर मन में शुद्ध और सात्विक विचारों को ही स्थान देना चाहिए। मन से अलग होकर मन का द्रष्टा बनकर उसके हर समय के व्यापारों का निरीक्षण करते रहना चाहिए। मन में जब-जब अशुभ विचार उदय हों तब-तब शुभ विचारों के द्वारा उन्हें दूर करना चाहिए। भगवान पतंजलि ने आदेश दिया है :-

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्।

अर्थात् क्लिष्ट विचारों को दूर करने के लिए उनके विरोधी विचारों की भावना करनी चाहिए। मन को हर समय शान्त बनाये रखने का प्रयत्न करना चाहिए। शांत मन शीघ्रता से एकाग्र होकर योगारूढ़ होने में सहायता प्रदान करता है। प्रतिक्षण भगवान का अथवा इष्टदेव का या आत्मा का चिन्तन करते रहना सर्वोत्कृष्ट मानसिक तप है। तत्परता के साथ मन के निग्रह में संलग्न रहना चाहिए और अन्तःकरण को सर्वदा पवित्र बनाये रखने का प्रयास करते रहना चाहिए।

ऊपर कायिक, वाचिक और मानसिक – तीनों प्रकार के पाप-तापों की शांति के निमित्त क्रमशः कायिक, वाचिक और मानसिक तपों की व्याख्या की गयी है। पापों का क्षय हुये बिना क्लेशों की निवृत्ति नहीं हो सकती और क्लेशों की निवृत्ति हुये बिना योग की प्रवृत्ति नहीं बनती। किन्तु तपों के अनुष्ठान में इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि जो तप किया जाय वह सात्विक तप हो। योगी के लिये राजस और तामस तपों का सर्वथा निषेध है। इन तीनों प्रकार के तपों का वर्णन भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में इस प्रकार किया है :-

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्विकं परिचक्षते।।

– गीता 17–17

अर्थात् – फल की कामना से रहित परम श्रद्धा के साथ किये हुए उपरोक्त तीनों प्रकार के तप को सात्विक तप कहते हैं।

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्।।

– गीता 17–18

अर्थात् – जो तप सत्कार, मान और पूजा के लिए या दम्भ से किया जाता है, वह अनिश्चित और क्षणिक फल प्रदान करने वाला तप राजस तप कहलाता है।

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।

परस्यात्सादनार्थ वा तत्तामसमुदाहृतम्।।

– गीता 17–18

अर्थात् – जो तप मूढ़तापूर्वक हठ से, शरीर, मन आदि को पीड़ा देकर अथवा दूसरे का अनिष्ट करने के लिए किया जाता है, वह तामस तप कहलाता है।

परम कल्याण की कामना वाले मनुष्य के लिए ऊपर बतलाये गये तीनों प्रकार के सात्विक तप ही अभिप्रेत हैं। राजस तप और तामस तप तो योगी के लिए सर्वथा त्याज्य है। राजस तप का परिणाम अनिश्चित होता है। यदि कोई परिणाम हो भी जाय तो वह अस्थायी और साधक को श्रेयमार्ग से गिराने वाला होता है। बड़े–बड़े तपस्वियों का जो पतन होते देखा जाता है उसका मूल कारण है राजस तप। इस प्रकार के तपों में लौकिक कामनायें निहित रहती हैं और ये कामनायें ही उन्हें मार्ग–च्युत कर देती हैं। तामस तप तो सर्वदा और सर्वथा त्याज्य है। ऐसा तप करने वाले को भगवान ने आसुरी स्वभाव वाला कहा है :–

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्तेये तपो जनाः।
दम्भाहंकार संयुक्ताः काम राग बलान्विताः।।
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान् विद्ध्यासुरनिश्चान्।।

– गीता 17–5–6

अर्थात्, जो मनुष्य शास्त्र विधि से रहित घोर तप को तपते हैं तथा दम्भ और अहंकार से युक्त हैं, साथ ही साथ कामना, आसक्ति और बलाभिमान से भी युक्त हैं तथा जो समस्त प्राणियों को और अन्तःकरण में स्थित मुझ परमात्म को भी कृश करने वाले हैं, उन अज्ञानियों को तू आसुर स्वभाव वाला जान।

अशास्त्रीय विधि से किया हुआ तप न तो लोक का सुख देने वाला होता है और न परलोक का ही। भगवान ने कहा भी है :–

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुख न परां गतिम्।।

(गीता 16–26)

अर्थात्, जो मनुष्य शास्त्र की विधि को छोड़कर अपनी इच्छा से वर्तता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है, न सुख को और न परम गति को प्राप्त होता है।

एक बार महर्षि भरद्वाज के पुत्र यवक्रीत ने वैदिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए कठोर तप आरम्भ कर दिया। शरीर को पंचाग्नि में तपाते हुए वे शरीर को घोर कष्ट देने लगे। उनके इस घोर कष्ट को देखकर इन्द्र प्रकट हुए और उन्होंने उनसे इस तप का कारण पूछा।

(शेष अगले अंक में)

सिद्धयोग

आय-व्यय का विवरण वर्ष 2013-14

आय		व्यय	
पिछला शेष (बैंक में जमा)	367406/-	निर्माण कार्य में	1,00,000/-
नगद हाथ में पिछला	689/-	सहयोग	
वार्षिक शुल्क से प्राप्त	140807/-	कागज व छपाई	1,56,389/-
सहयोग राशि से प्राप्त	57316/-	कार्यालय खर्च	13100/-
मनीआर्डर से प्राप्त	5501/-	बैंक में जमा	291945/-
बैंक से प्राप्त ब्याज	13473/-	नगद हाथ में	24808/-
चैक से प्राप्त	1050/-		
कुल योग -	5,86,242/-	कुल योग -	5,86,242/-

सहयोग राशि दाताओं की सूची

पुतान सिंह, हरदोई	1000/-	ईश्वर, धनाना	501/-
अखिलेश सक्सेना, बम्बई	2100/-	बलवंत सिंह सैनी, जीन्द	500/-
यशपाल डांडा, पानीपत	500/-	जसवन्त सिंह, करनाल	500/-
कल्पना गुप्ता, लखनऊ	2101/-	शमशेर सिंह, करनाल	500/-
त्रिपुरारी पाण्डे, बलिया	5000/-	वीरेन्द्र, करनाल	500/-
बी.एम. दयाल, कानपुर	1100/-	कर्मवीर पाल, करनाल	500/-
जगदीश गुप्ता, कालपी	1100/-	सुरेन्द्र कोहण्ड	555/-
रजनीश नांगल	1100/-	सचिन, मिर्जापुर	501/-
नरेश अग्रवाल, शिकोहाबाद	1100/-	मंगलदत्त शर्मा, करनाल	500/-
ललित देव पंचकूला	1850/-	शिव सेवक पाण्डे, बैतूल	500/-
शंकरलाल साई, शिवपुरी	1100/-	साहब सिंह सेंगर, कालपी	501/-
ओमकार श्रीवास्तव, जौनपुर	1100/-	अमरनाथ वर्मा, बलिया	500/-
अनिरुद्ध प्रधान, गाजीपुर	1100/-	रामकृष्णबैतूल, मालवीय	100/-
शशि प्रधान, गाजीपुर	1100/-	प्रकाश सिंह तोमर, आगरा	5100/-
रंजना सिंह, गाजीपुर	1100/-	प्रदीप त्रिवेदी, ग्वालियर	500/-
अनामिका राय, गाजीपुर	1100/-	साहब सिंह सेंगर, जालौन	501/-
ओमवती देवी, हापुड़	500/-	जे.पी. गुप्ता, गंगापुर सिटी	500/-
रामचन्द मलिक करनाल	505/-	आनन्द प्रकाश श्रीवास्तव, एत्मादपुर	500/-
जे.पी. गुप्ता, गंगापुर	501/-	योग :-	57,316/-

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ________________

____

____

□□□□□□

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।
शिवाकारे मंचे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्या: कतिचन चिदानन्दलहरीम्।।

''अमृतसागर के मध्य एक मणिमय द्वीप है, जो कल्पवृक्षों की वाटिका से घिरा हुआ है। उस द्वीप के मध्य कदम्ब के उपवन से आवृत चिन्तामणि से निर्मित एक भव्य भवन है, जिसमें शिवाकार मंच के ऊपर स्थित परमशिवस्वरूप पर्यङ्क पर भगवती चिदानन्दलहरी विराजमान रहती हैं, ऐसी आप भगवती का जो कतिपय भावुक भक्त निरन्तर भजन करते रहते हैं, वे धन्य हैं।''

संस्थापक:– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा